जीव धड़े का थोकड़ा

अनेक सूत्रों के आधार से जीव धड़े का अधिकार चले सो कहते हैं।

जीव के 563 भेदों में से नरक गति आदि मार्गणाओं में जीवों के जितने-जितने भेदों का समूह पाया जाता हैं, उसे जीव धड़ा कहते हैं।

इन 563 भेदों का गति आदि गाथा के अनुसार 21 मार्गणाओं एवं अन्य कुछ मार्गणाओं पर वर्णन किया जाता है।

जीव के 563 भेद-

नारकी के 14, तिर्यंच के 48, मनुष्य के 303 और देवता के 198। इस प्रकार कुल 563 भेद हुए।

मार्गणाओं की गाथा-

जीव, गइ, इंदिय, काए, जोए, वेए, कसाए य।
लेसा, सम्मत्त, नाणे, दंसण, संजय, उवओग, आहारे।।1।।

भासक, परित्त, पज्जत्ते, सुहुम, सन्नी, भवत्थ, चरमे य।
इइ संति पद्दाणं, जीवधडो होइ नायव्वो।।2।।

क्र. सं.	जीवों की मार्गणा	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	समुच्चय
(1) जीव द्वार-						
1.	समुच्चय जीव में	14	48	303	198	563
(2) गति द्वार-						
2.	नरक गति में	14	-	-	-	14
3.	तिर्यंच गति में	-	48	-	-	48
4.	तिर्यंचिणी में	-	10	-	-	10
5.	मनुष्य गति में	-	-	303	-	303
6.	मनुष्यिणी में	-	-	202	-	202
7.	देव गति में	-	-	-	198	198
8.	देवांगना में	-	-	-	128	128
9.	सिद्धों (सिद्धगति में)	-	-	-	-	-
(3) इन्द्रिय द्वार-						
10.	सइन्द्रिय में	14	48	303	198	563
11.	एकेन्द्रिय में	-	22	-	-	22
12.	बेइन्द्रिय में	-	2	-	-	2
13.	तेइन्द्रिय में	-	2	-	-	2
14.	चउरेन्द्रिय में	-	2	-	-	2
15.	पंचेन्द्रिय में	14	20	303	198	535
16.	श्रोत्रेन्द्रिय में	14	20	303	198	535
17.	चक्षुरिन्द्रिय में	14	22	303	198	537
18.	घ्राणेन्द्रिय में	14	24	303	198	539
19.	रसनेन्द्रिय में	14	26	303	198	541
20.	स्पर्शनेन्द्रिय में	14	48	303	198	563
21.	अनिन्द्रिय में	-	-	15	-	15
(4) काय द्वार-						
22.	सकाय में	14	48	303	198	563
23.	पृथ्वीकाय में	-	4	-	-	4
24.	अप्काय में	-	4	-	-	4
25.	तेउकाय में	-	4	-	-	4
26.	वायुकाय में	-	4	-	-	4

27.	वनस्पतिकाय में	–	6	–	–	6
28.	त्रसकाय में	14	26	303	198	541
29.	अकाय में	–	–	–	–	–
(5) योग द्वार-						
30.	सयोगी में	14	48	303	198	563
31.	मन योगी में	7	5	101	99	212
32.	वचन योगी में	7	13	101	99	220
33.	काय योगी में	14	48	303	198	563
34.	चार मन, तीन वचन, इन सात योग में	7	5	101	99	212
35.	व्यवहार भाषा में	7	13	101	99	220
36.	औदारिक काय योग में	–	48	303	–	351
37.	औदारिक मिश्र काय योग में	–	30	217	–	247
38.	वैक्रिय काय योग में	14	6	15	198	233
39.	वैक्रिय मिश्र काय योग में	14	6	15	184	219
40.	आहारक और आहारक मिश्र काय योग में	–	–	15	–	15
41.	कार्मण काय योग में	7	24	217	99	347
42.	अयोगी में	–	–	15	–	15
(6) वेद द्वार-						
43.	सवेदी में	14	48	303	198	563
44.	स्त्री वेद में	–	10	202	128	340
45.	पुरुष वेद में	–	10	202	198	410
46.	नपुंसक वेद में	14	48	131	–	193
47.	एक वेद में	14	38	101	70	223
48.	दो वेद में	–	–	172	128	300
49.	तीन वेद में	–	10	30	–	40
50.	एकान्त पुरुष वेद में	–	–	–	70	70
51.	एकान्त स्त्रीवेद में	–	–	–	–	–
52.	एकान्त नपुंसक वेद में	14	38	101	–	153
53.	अवेदी में	–	–	15	–	15
(7) कषाय द्वार-						
54.	सकषायी, क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय में	14	48	303	198	563
55.	अकषायी में	–	–	15	–	15
(8) लेश्या द्वार-						
56.	सलेश्यी में	14	48	303	198	563
57.	कृष्ण, नील, कापोत लेश्या में	6	48	303	102	459
58.	तेजो लेश्या में	–	13	202	128	343
59.	पद्म लेश्या में	–	10	30	26	66
60.	शुक्ल लेश्या में	–	10	30	44	84
61.	एक लेश्यी में	10	–	–	96	106
62.	दो लेश्यी में	4	–	–	–	4
63.	तीन लेश्यी में	–	35	101	–	136
64.	चार लेश्यी में	–	3	172	102	277
65.	पाँच लेश्यी में	–	–	–	–	–
66.	छः लेश्यी में	–	10	30	–	40
67.	एकान्त कृष्ण लेश्यी में	4	–	–	–	4
68.	एकान्त नील लेश्यी में	2	–	–	–	2

69.	एकान्त कापोत लेश्यी में	4	–	–	–	4
70.	एकान्त तेजो लेश्यी में	–	–	–	26	26
71.	एकान्त पद्म लेश्यी में	–	–	–	26	26
72.	एकान्त शुक्ल लेश्यी में	–	–	–	44	44
73.	अलेश्यी में	–	–	15	–	15
(9) दृष्टि द्वार-						
74.	सम्यग्दृष्टि में	13	18	90	162	283
75.	मिथ्यादृष्टि में	14	48	303	188	553
76.	मिश्रदृष्टि में	7	5	15	76	103
77.	सास्वादन समकिती में	7	18	30	143	198
78.	उपशम समकिती में	7	5	15	111	138
79.	वेदक समकिती (क्षायिक वेदक) में	3	1	55	35	94
80.	क्षयोपशम समकिती में	13	10	90	162	275
81.	क्षायिक समकिती में	6	2	90	70	168
82.	एकान्त सम्यग्दृष्टि में	–	–	–	10	10
83.	एकान्त मिथ्यादृष्टि में	1	30	213	36	280
84.	एक दृष्टि में	1	30	213	46	290
85.	दो दृष्टि में	6	13	75	76	170
86.	तीन दृष्टि में	7	5	15	76	103
(10) ज्ञान द्वार -						
87.	सज्ञानी मति-श्रुत ज्ञानी में	13	18	90	162	283
88.	अवधि ज्ञानी में	13	5	30	162	210
89.	मनःपर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी में	–	–	15	–	15
90.	समुच्चय अज्ञानी और मति-श्रुत अज्ञानी में	14	48	303	188	553
91.	विभंग ज्ञानी में	14	5	15	188	222
(11) दर्शन द्वार-						
92.	चक्षु दर्शन में	14	22	303	198	537
93.	अचक्षु दर्शन में	14	48	303	198	563
94.	अवधि दर्शन में	14	5	30	198	247
95.	केवल दर्शन में	–	–	15	–	15
(12) संयम द्वार-						
96.	समुच्चय संयती, सामायिक, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात चारित्र में	–	–	15	–	15
97.	छेदोपस्थापनिक, परिहार विशुद्धि चारित्र में	–	–	10	–	10
98.	संयतासंयत में	–	5	15	–	20
99.	असंयती में	14	48	303	198	563
100.	नो संयती, नो असंयती, नो संयतासंयती में	–	–	–	–	–
(13) उपयोग द्वार-						
101.	साकार उपयोग, अनाकार उपयोग में	14	48	303	198	563
(14) आहारक द्वार -						
102.	आहारक में	14	48	303	198	563
103.	अनाहारक में	7	24	217	99	347
(15) भाषक द्वार -						
104.	भाषक में	7	13	101	99	220
105.	अभाषक में	7	35	217	99	358
(16) परीत द्वार-						
106.	परीत में (संसार परीत में)	14	48	303	198	563

107.	अपरीत में	14	48	303	188	553
108.	नो परीत नो अपरीत में	–	–	–	–	–
(17) पर्याप्त द्वार-						
109.	पर्याप्त में	7	24	101	99	231
110.	अपर्याप्त में	7	24	202	99	332
111.	नो पर्याप्त नो अपर्याप्त में	–	–	–	–	–
(18) सूक्ष्म द्वार-						
112.	सूक्ष्म में	–	10	–	–	10
113.	बादर में	14	38	303	198	553
114.	नो सूक्ष्म नो बादर में	–	–	–	–	–
(19) सन्नी द्वार-						
115.	सन्नी में	14	10	202	198	424
116.	असन्नी में	1	38	101	51	191
117.	नो सन्नी नो असन्नी में	–	–	15	–	15
(20) भवी द्वार-						
118.	भवी में	14	48	303	198	563
119.	अभवी में	14	48	303	188	553
120.	नो भवी नो अभवी में	–	–	–	–	–
(21) चरम द्वार-						
121.	चरम में	14	48	303	198	563
122.	अचरम में	14	48	303	188	553
(22) संहनन द्वार-						
123.	वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन में	–	10	202	–	212
124.	मध्यम के चार संहनन में	–	10	30	–	40
125.	सेवार्तक संहनन में	–	48	131	–	179
(23) संस्थान द्वार						
126.	समचतुरस्र संस्थान में	–	10	202	198	410
127.	मध्यम चार संस्थान में	–	10	30	–	40
128.	हुण्डक संस्थान में	14	48	131	–	193
(24) क्षेत्र द्वार-						
129.	ऊँचा लोक में	–	46	–	76	122
130.	नीचा लोक में	14	48	3	50	115
131.	तिरछा लोक में	–	48	303	72	423
132.	जम्बू द्वीप में	–	48	27	–	75
133.	धातकी खण्ड एवं अर्ध पुष्कर द्वीप में	–	48	54	–	102
134.	भरत-एरवत क्षेत्र में (दोनों में अलग-अलग)	–	48	3	–	51
135.	महाविदेह क्षेत्र में	–	48	9	–	57
136.	कालोदधि समुद्र और मेरू पर्वत में	–	46	–	–	46
137.	लवण समुद्र में	–	48	168	–	216
138.	नन्दीश्वर द्वीप में	–	46	–	–	46
139.	अढ़ाई द्वीप में	–	48	303	–	351
140.	अढ़ाई द्वीप के बाहर	–	46	–	72	118
141.	सिद्ध शिला में	–	12	–	–	12
142.	सिद्ध शिला के ऊपर, सातवीं नरक के नीचे और लोक के चरमान्त में	–	12	–	–	12
(25) शाश्वत द्वार -						
143.	शाश्वत में	7	43	101	99	250

144.	अशाश्वत में	7	5	202	99	313
(26) अमर द्वार -						
145.	अमर में	7	-	86	99	192
146.	मरने वालों में	7	48	217	99	371
(27) गर्भज द्वार -						
147.	गर्भज में	-	10	202	-	212
148.	नो गर्भज में	14	38	101	198	351

जीवधड़ा का विवेचन

नारकी के 14 भेद-

सात नारकी के नाम- 1. घम्मा, 2. वंसा, 3. सीला, 4. अंजणा, 5. रिट्ठा, 6. मघा, 7. माघवई। इन सात के अपर्याप्त और पर्याप्त, कुल 14 भेद।

तिर्यंच के 48 भेद-

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय, इन चार प्रकार के स्थावर जीवों के प्रत्येक के सूक्ष्म, बादर से 8 और उनके अपर्याप्त, पर्याप्त से 8, ये कुल 16 भेद हुए। वनस्पतिकाय के सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक इन तीन के अपर्याप्त और पर्याप्त ये 6 भेद हुए। इस प्रकार 5 स्थावर के कुल 22 भेद हुए।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय रूप तीन विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त से 6 भेद हुए।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- 1. जलचर, 2. स्थलचर, 3. खेचर, 4. उरपरिसर्प और 5. भुजपरिसर्प। ये पाँचों ही असंज्ञी और पाँचों ही संज्ञी 10 भेद हुए। इन दसों के अपर्याप्त और पर्याप्त रूप से 20 भेद हुए। इस प्रकार तिर्यंच जीवों के 22+6+20=48 भेद हुए।

मनुष्य के 303 भेद-

कर्मभूमिज मनुष्य के 15 भेद- यथा 5 भरत, 5 ऐरवत और 5 महाविदेह में उत्पन्न मनुष्य के 15 भेद।

अकर्मभूमिज मनुष्य के 30 भेद- यथा 5 देवकुरू, 5 उत्तरकुरू, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 हेमवत और 5 ऐरण्यवत। इस प्रकार ये 30 भेद।

56 अन्तरद्वीपों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के 56 भेद- ये सभी मिलाकर गर्भज मनुष्य के 101 भेद होते हैं। इनके अपर्याप्त और पर्याप्त 202 भेद होते हैं। इन 101 की अशुचि में उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य के 101 भेद। ये 101 भेद अपर्याप्त ही होते हैं, ये सब मिलाकर मनुष्य के 303 भेद होते हैं।

देव के 198 भेद-

10 भवनपति के 10 भेद- 1. असुरकुमार, 2. नागकुमार, 3. सुपर्णकुमार, 4. विद्युत्कुमार, 5. अग्निकुमार, 6. उदधिकुमार, 7. द्वीपकुमार, 8. दिशाकुमार, 9. पवनकुमार, 10. स्तनितकुमार।

परमाधार्मिक देवों के 15 भेद- यथा 1. अम्ब, 2. अम्बरीष, 3. श्याम, 4. शबल, 5. रौद्र, 6. महारौद्र, 7. काल, 8. महाकाल, 9. असिपत्र, 10. धनुष, 11. कुम्भ, 12. बालुका, 13. वैतरणी, 14. खरस्वर और 15. महाघोष।

वाणव्यन्तर देवों के 16 भेद- 1. पिशाच, 2. भूत, 3. यक्ष, 4. राक्षस, 5. किन्नर, 6. किम्पुरुष, 7. महोरग, 8. गन्धर्व, 9. आणपण्णे, 10. पाणपण्णे, 11. इसिवाई, 12. भूयवाई, 13. कन्दे, 14. महाकन्दे, 15. कूह्माण्डे, 16. पयंगदेवे।

जृम्भक देवों के 10 भेद- 1. अन्न जृम्भक, 2. पान जृम्भक, 3. लयन जृम्भक, 4. शयन जृम्भक, 5. वस्त्र जृम्भक, 6. फल जृम्भक, 7. पुष्प जृम्भक, 8. फलपुष्प जृम्भक, 9. विद्या जृम्भक, 10. अव्यक्त जृम्भक।

ज्योतिषी देवों के 10 भेद- 1. चन्द्र, 2. सूर्य, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र, 5. तारा। इनमें 5 चर एवं 5 अचर के भेद से 10 भेद हो जाते हैं।

वैमानिक देवों के कल्पोत्पन्न और कल्पातीत दो भेद हैं। इनमें कल्पोत्पन्न के 12 भेद- 1. सौधर्म, 2. ईशान, 3. सनत्कुमार, 4. माहेन्द्र, 5. ब्रह्मलोक, 6. लांतक, 7. महाशुक्र, 8. सहस्रार, 9. आणत, 10. प्राणत, 11. आरण और 12. अच्युत।

लोकान्तिक देवों के 9 भेद- 1. सारस्वत, 2. आदित्य, 3. वह्नि, 4. वरूण, 5. गर्दतोय, 6. तुषित, 7. अव्याबाध, 8. आग्नेय और 9. अरिष्ट।

3 किल्विषिक देव- 1. त्रैपल्योपमिक- पहले और दूसरे देवलोक के नीचे के प्रतर में, 2. त्रैसागरिक- तीसरे और चौथे देवलोक के नीचे के प्रतर में और 3. त्रयोदश सागरिक- पाँचवें देवलोक के ऊपर और छठे देवलोक के नीचे हैं।

कल्पातीत के दो भेद- 1. ग्रैवेयक और 2. अनुत्तर वैमानिक। ग्रैवेयक के 9 भेद- 1. भद्र, 2. सुभद्र, 3. सुजात, 4. सुमनस, 5. सुदर्शन, 6. प्रियदर्शन, 7. आमोह, 8. सुप्रतिबद्ध और 9. यशोधर।

अनुत्तर वैमानिक के 5 भेद- 1. विजय, 2. वैजयन्त, 3. जयन्त, 4. अपराजित और 5. सर्वार्थसिद्ध।

इस प्रकार 10 भवनपति, 15 परमाधार्मिक, 16 वाणव्यन्तर, 10 जृम्भक, 10 ज्योतिषी, 12 वैमानिक, 3 किल्विषिक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर वैमानिक। कुल मिलाकर 99 भेद हुए। इन सबके अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से देवों के 198 भेद होते हैं।

पन्नवणा सूत्र पद पहला- जीव प्रज्ञापना में संसारस्थ जीवों के उक्त 563 भेद बतलाये गये हैं।

1. जीव द्वार

1. समुच्चय जीव में 563 भेद (14 नारकी, 48 तिर्यंच, 303 मनुष्य और 198 देवता के)

2. गति द्वार

2. नरक गति में 14 भेद (नारकी के 14)
3. तिर्यंच गति में 48 भेद (48 तिर्यंच के)
4. तिर्यंचिणी में 10 भेद (5 सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त-पर्याप्त)
5. मनुष्य गति में 303 भेद (303 मनुष्य के)
6. मनुष्यिणी में 202 भेद (101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त)
7. देवगति में 198 भेद (198 देवता के)
8. देवांगना (देवी) में 128 भेद (10 भवनपति, 15 परमाधामी, 16 वाणव्यंतर, 10 जृम्भक, 10 ज्योतिषी, पहला-दूसरा देवलोक और पहला किल्विषी इन 64 के अपर्याप्त-पर्याप्त।)
9. सिद्धों (सिद्धगति) में - नहीं।

3. इन्द्रिय द्वार

10. सइन्द्रिय में 563 भेद (पूर्ववत्)
11. एकेन्द्रिय में 22 भेद
12. बेइन्द्रिय में 2 भेद
13. तेइन्द्रिय में 2 भेद
14. चौरेन्द्रिय में 2 भेद
15. पंचेन्द्रिय में 535 भेद (563 में से एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय के 28 छोड़कर)
16. श्रोत्रेन्द्रिय में 535 भेद (पंचेन्द्रियवत्)
17. चक्षुरिन्द्रिय में 537 भेद (535 पूर्ववत् एवं चौरेन्द्रिय के 2 बढ़े)
18. घ्राणेन्द्रिय में 539 भेद (537 पूर्ववत् एवं तेइन्द्रिय के 2 बढ़े)
19. रसनेन्द्रिय में 541 भेद (539 पूर्ववत् एवं बेइन्द्रिय के 2 बढ़े)
20. स्पर्शेन्द्रिय में 563 भेद (सइन्द्रियवत्)
21. अनिन्द्रिय में 15 भेद (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)

4. काय द्वार

22. सकाय में 563 भेद (पूर्ववत्)
23. पृथ्वीकाय में 4 भेद (सूक्ष्म, बादर का अपर्याप्त-पर्याप्त)
24. अप्काय में 4 भेद (सूक्ष्म, बादर का अपर्याप्त-पर्याप्त)
25. तेजस्काय में 4 भेद (सूक्ष्म, बादर का अपर्याप्त-पर्याप्त)
26. वायुकाय में 4 भेद (सूक्ष्म, बादर का अपर्याप्त-पर्याप्त)
27. वनस्पतिकाय में 6 भेद (सूक्ष्म, साधारण, प्रत्येक, इन तीन के अपर्याप्त-पर्याप्त)
28. त्रसकाय में 541 भेद (563 में से एकेन्द्रिय के 22 छोड़कर)
29. अकाय में जीव के भेद (नहीं)

5. योग द्वार

30. सयोगी में 563 भेद (पूर्ववत्)
31. मनयोगी में 212 भेद (7 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, 101 सन्नी मनुष्य और 99 देवता, इन सबके पर्याप्त)
32. वचनयोगी में 220 भेद (212 मनयोगीवत्, 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 3 विकलेन्द्रिय के पर्याप्त)
33. काय योगी में 563 भेद (पूर्ववत्)
34. 4 मन एवं 3 वचन, इन 7 योगों में 212 भेद (मनयोगीवत्)
35. व्यवहार भाषा में 220 भेद (वचनयोगीवत्)
36. औदारिक काययोग में 351 (48 तिर्यंच व 303 मनुष्य के)
37. औदारिक मिश्र काययोग में 247 भेद (24 तिर्यंच के अपर्याप्त, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं 1 बादर वायुकाय का पर्याप्त = 30 तिर्यंच के, 217 मनुष्य के- 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य, 101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त और 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)
38. वैक्रिय काय योग में 233 भेद (14 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं 1 बादर वायुकाय का पर्याप्त, 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त और 198 देवता के)
39. वैक्रिय मिश्र काय योग में 219 भेद- नारकी के अपर्याप्त एवं पर्याप्त दोनों ही अवस्था में वैक्रिय मिश्र माना गया है। देवता में सभी के अपर्याप्त में तथा 85 देवों के पर्याप्त में (9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमान के पर्याप्त उत्तर वैक्रिय नहीं करते) वैक्रिय मिश्र काययोग माना गया है, क्योंकि पन्नवणा सूत्र के 15वें प्रयोग पद में नारकी, देवता में 10 योग शाश्वत माने गये हैं जो कि पर्याप्त अवस्था में वैक्रिय मिश्र मानने पर ही घटित हो पाते हैं। पर्याप्त अवस्था में विजातीय मिश्र न होकर सजातीय मिश्र (वैक्रिय से वैक्रिय पुद्गलों का) की अपेक्षा से वैक्रिय मिश्र माना जाता है। अतः जीव के भेद- 14 नारकी, 6 तिर्यंच (5 सन्नी तिर्यंच, 1 बादर वायुकाय के पर्याप्त), 15 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त, 184 देवता-(99 अपर्याप्त, 85 पर्याप्त) इस प्रकार कुल 14+6+15+184=219 भेद होते हैं।
40. आहारक काय योग में और आहारक मिश्र काय योग में 15 भेद- 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)
41. कार्मण काययोग में 347 भेद (7 नारकी के अपर्याप्त, 24 तिर्यंच के अपर्याप्त, 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के, 101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त, 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त (केवली समुद्घात की अपेक्षा) और 99 देवता के अपर्याप्त)
42. अयोगी में 15 भेद (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)

6. वेद द्वार

43. सवेदी में 563 भेद (पूर्ववत्)
44. स्त्रीवेद में 340 भेद (5 सन्नी तिर्यंच, 101 सन्नी मनुष्य और 64 जाति के देवता (इन 170 के अपर्याप्त-पर्याप्त)
45. पुरुष वेद में 410 भेद (उपर्युक्त 340 में शेष 35 जाति के देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त बढ़ाने से 410 भेद)
46. नपुंसक वेद में 193 भेद (14 नारकी, 48 तिर्यंच, 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य [1] और 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त)
47. एक वेद में 223 भेद (14 नारकी, 10 सन्नी तिर्यंच के छोड़कर 38 तिर्यंच, 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य और तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक 35 जाति के देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त = 70 देवता के)
48. दो वेद में 300 भेद (86 युगलिक के अपर्याप्त-पर्याप्त = 172 मनुष्य के और भवनपति से लेकर दूसरे देवलोक तक के अपर्याप्त-पर्याप्त 128 देवता के)
49. तीन वेद में 40 भेद (5 सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त-पर्याप्त एवं 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त)
50. एकान्त पुरुषवेद में 70 भेद (तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक के 35 वैमानिक देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त)
51. एकान्त स्त्रीवेद में जीव का भेद- नहीं

[1] सम्मूर्च्छिम मनुष्य नियमा अपर्याप्त ही काल करते हैं, इसलिए इनका पर्याप्त भेद नहीं लिया है।

52. एकान्त नपुंसक वेद में 153 भेद { 14 नारकी, 38 तिर्यंच (10 सन्नी तिर्यंच के छोड़कर) और 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के }
53. अवेदी में 15 भेद (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)

7. कषाय द्वार

54. सकषायी एवं क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय में 563 भेद (पूर्ववत्)
55. अकषायी में 15 भेद (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)

8. लेश्या द्वार

56. सलेश्यी में 563 भेद (पूर्ववत्)
57. कृष्ण, नील और कापोत लेश्या में 459 भेद {पहली, दूसरी, तीसरी नारकी के अपर्याप्त पर्याप्त में कापोत लेश्या, तीसरी चौथी, पाँचवीं नारकी के अपर्याप्त-पर्याप्त में नील लेश्या, पाँचवीं, छठी, सातवीं नारकी के अपर्याप्त-पर्याप्त में कृष्ण लेश्या पाई जाती हैं। इस प्रकार कृष्ण, नील, कापोत लेश्या इन तीनों में, प्रत्येक में नरक के 6-6 भेद होते हैं। 48 तिर्यंच, 303 मनुष्य (10 भवनपति, 15 परमाधामी, 16 वाणव्यन्तर, 10 जृम्भक, इन 51 के अपर्याप्त-पर्याप्त) = 102 देवता }
58. तेजो लेश्या में 343 भेद (5 सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त-पर्याप्त, 3 बादर पृथ्वी, पानी, वनस्पति के अपर्याप्त = 13 तिर्यंच के, 101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त = 202 मनुष्य के, 64 जाति के देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त = 128 देवता 13+202+128=343)
59. पद्म लेश्या में 66 भेद (5 सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त-पर्याप्त, 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त, तीसरा चौथा, पाँचवाँ देवलोक, दूसरा किल्विषी, 9 लोकान्तिक = इन 13 के अपर्याप्त-पर्याप्त 10+30+26=66)
60. शुक्ल लेश्या में 84 भेद- 10 सन्नी तिर्यंच के, 30 सन्नी मनुष्य के, छठे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक 22 जाति के देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त, इस प्रकार 44 देवता के (10+30+44=84)
61. एक लेश्या में 106 भेद (10 नारकी के, ज्योतिषी से लेकर सर्वार्थ सिद्ध विमान तक के 48 जाति के देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त)
62. दो लेश्या में 4 भेद (तीसरी, पाँचवीं नारकी का अपर्याप्त-पर्याप्त)
63. तीन लेश्या में 136 भेद (10 संज्ञी तिर्यंच के, बादर पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय के अपर्याप्त इन 13 भेदों को छोड़कर 35 तिर्यंच के, 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के)
64. चार लेश्या में 277 भेद (बादर पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय के अपर्याप्त ये 3 तिर्यंच के, 86 युगलियों के अपर्याप्त-पर्याप्त = 172 मनुष्य के, 51 जाति के देवता (25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर) के अपर्याप्त-पर्याप्त = 102 देवता के)
65. पाँच लेश्या में जीव के भेद - नहीं
66. छः लेश्या में जीव के भेद 40 (10 सन्नी तिर्यंच के एवं 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त)
67. एकान्त कृष्ण लेश्या में 4 भेद (छठी एवं सातवीं नारकी का अपर्याप्त-पर्याप्त)
68. एकान्त नील लेश्या में 2 भेद (चौथी नारकी का अपर्याप्त-पर्याप्त)
69. एकान्त कापोत लेश्या में 4 भेद (पहली-दूसरी नारकी का अपर्याप्त-पर्याप्त)
70. एकान्त तेजो लेश्या में 26 भेद (10 ज्योतिषी, पहला, दूसरा देवलोक, पहला किल्विषी, इन 13 के अपर्याप्त-पर्याप्त)
71. एकान्त पद्म लेश्या में 26 भेद (पद्म लेश्या में कथित देवता के 26 भेद)
72. एकान्त शुक्ल लेश्या में 44 भेद (शुक्ल लेश्या में कथित देवता के 44 भेद)
73. अलेश्यी में 15 भेद (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)

9. दृष्टि द्वार

74. सम्यग्दृष्टि में 283 भेद (सातवीं नारकी का अपर्याप्त छोड़कर 13 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त-पर्याप्त, 5 असन्नी तिर्यंच, 3 विकलेन्द्रिय इन 8 के अपर्याप्त = 18 तिर्यंच, 15 कर्मभूमिज व 30 अकर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त = 90 मनुष्य के तथा 15 परमाधामी एवं 3 किल्विषी के अपर्याप्त-पर्याप्त = ये 36 छोड़कर देवता के 162 भेद)
75. मिथ्यादृष्टि में 553 भेद (563 में से 5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)
76. मिश्रदृष्टि में 103 भेद- {7 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच, 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य, 76 देवता, इन सबके पर्याप्त (15 परमाधामी, 3 किल्विषी, 5 अनुत्तर विमान के पर्याप्त छोड़कर) 7+5+15+76=103} भगवती सूत्र शतक 13 उद्देशक 2 में ग्रैवेयक तक मिश्रदृष्टि होने का स्पष्ट उल्लेख है। ऐसा ही उल्लेख शतक 24 उद्देशक 21 में है और जीवाजीवाभिगम सूत्र की चतुर्विधा नामक तृतीय प्रतिपत्ति के द्वितीय वैमानिक उद्देशक में भी ऐसा ही उल्लेख है। अतएव मिश्रदृष्टि में देवों के 76 और कुल 103 भेद माने गये हैं। इसी प्रकार तीन दृष्टि में भी 103 भेद समझना चाहिये। कर्मग्रन्थ भाग-3 गाथा-11 में भी नवग्रैवेयक में मिश्र गुणस्थान माना गया है।

77. सास्वादन समकिती- कर्मग्रन्थ भाग-2 गाथा 14 में उल्लेख है कि सास्वादन समकित में नरकानुपूर्वी का उदय नहीं होता है। अतः सास्वादन समकित में नारकी के अपर्याप्त भेद नहीं लेकर, पर्याप्त के भेद ही माने गये हैं। जीव के भेद- 198 (7 नरक के पर्याप्त, 3 विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त, 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त इस प्रकार तिर्यंच के 18, मनुष्य के 30-15 कर्मभूमिज के अपर्याप्त व पर्याप्त, देवता के 143 भेद होते हैं- (15 परमाधामी, 3 किल्विषी, 5 अनुत्तर विमान इन 23 के अपर्याप्त व पर्याप्त = 46 तथा 9 ग्रैवेयक के अपर्याप्त, इन 55 भेदों को छोड़कर 198-55=143) प्रज्ञापना सूत्र के छठें पद में वर्णित छोटी गतागत से यह ज्ञात होता है कि नव ग्रैवेयक में सलिंगी सम्यग्दृष्टि साधु तथा सलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु ही जाते हैं। सलिंगी सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में तथा सलिंगी मिथ्यादृष्टि पहले गुणस्थान में जाकर उत्पन्न होते हैं। अतः नव ग्रैवेयक के अपर्याप्त अवस्था में दूसरा गुणस्थान अर्थात् सास्वादन समकित के भेद नहीं लिये गये हैं।

78. उपशम समकिती में जीव के भेद 138- 7 नरक के, 5 सन्नी तिर्यंच के, 15 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त तथा देवों के 111 भेद- (35 वैमानिक के अपर्याप्त, सातवें से ग्यारहवें गुणस्थान में काल करने की अपेक्षा से और 76 देवों के पर्याप्त- 15 परमाधामी, 3 किल्विषी और अनुत्तर विमान को छोड़कर, इस तरह कुल =138 (7+5+15+111) भेद होते हैं।

अन्य मान्यताएँ-

(1) कर्मग्रन्थ भाग-4 आदि में देवगति को छोड़कर बाकी तीन गतियों के अपर्याप्त में उपशम समकित नहीं मानी है। देवगति के 81 अपर्याप्त में से 5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त में कोई उपशम समकित मानते हैं और कोई नहीं मानते। इस प्रकार दो मत मिलते हैं। अतः 5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त में उपशम समकित मानने वालों की अपेक्षा से 184 भेद होते हैं। (7 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच, 15 कर्मभूमिज, इन सबके पर्याप्त तथा 76 देवों के अपर्याप्त व पर्याप्त तथा 5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त अर्थात् 7+5+15+157=184)

(2) 5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त में उपशम समकित नहीं मानने वालों की अपेक्षा से 179 भेद होते हैं- 7+5+15+152=179)

(3) चौथे कर्मग्रन्थ की गाथा 14 के अर्थ में मतान्तर से चारों गति के अपर्याप्त में उपशम समकित मानी ही नहीं गई है, तदनुसार उपशम समकित (प्रथमोपशम) में जीव के 103 भेद- (7+5+15+76) पर्याप्त ही होते हैं।

79. वेदक समकित में- आयु का अबन्धक या जिसने 3 नरक, 35 वैमानिक, युगलिक थलचर और मनुष्य (दोनों की 1 पल्योपम या अधिक) इनमें से किसी की भी आयु बान्धी हो वही कर्मभूमिज मनुष्य क्षायिक समकित प्राप्ति की ओर बढ़ सकता है। आयु बन्धक जीव मिश्र मोहनीय की क्षपणा कर मोहनीय कर्म की 22 प्रकृतियों की सत्ता वाला होकर कृतकृत्य वेदक कहलाकर काल कर सकता है तथा वह जीव तद्-तद् भव के अपर्याप्त में समकित मोह के चरम दलिकों का वेदन करते समय वेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

35 वैमानिक देव, 3 नरक, 1 तिर्यंच युगलिक = 39 के साथ 40 मनुष्य के इस प्रकार कुल 79 अपर्याप्त भेद।

युगलिक मनुष्य में 30 अकर्मभूमिज के साथ 1 पल्योपम तक का भरत-ऐरवत (पहला, दूसरा और तीसरा लगते आरे) का युगलिक भी सम्मिलित करने पर 40 भेद मनुष्य के हो जाते हैं। महाविदेह व शेष समय के भरत-ऐरवत के कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त इसमें सम्मिलित नहीं किये जा सकते। हाँ, इन 15 कर्मभूमिज के पर्याप्त में योग्यतानुसार वेदक समकित उपलब्ध हो सकती है। अतः 79+15=94 भेद वेदक समकित में लिये गये हैं।

दूसरी अपेक्षा से कहें तो क्षायिक समकित वाले 168 भेदों के अपर्याप्त 84 होते हैं। 5 महाविदेह में युगलिक अवस्था सम्भव नहीं होने से उनके अपर्याप्त में वेदक समकित सम्भव नहीं। अत 84-5=79 अपर्याप्त और 15 कर्मभूमिज पर्याप्त (79+15=94) काल नहीं करने पर पर्याप्त अवस्था में क्षायिक समकित से 1 समय पूर्व वेदक समकिती होते हैं।

अथवा

ग्रन्थों में वर्णित उपशम वेदक-द्वितीयोपशम से पूर्ववर्ती क्षण भी इन्हीं 15 कर्मभूमिज मनुष्यों में ही होता है। अतः पर्याप्त के 15 भेद लेना। इस प्रकार 79 अपर्याप्त + 15 पर्याप्त = 94 भेद लेने चाहिये।

सप्ततिका प्रकरण टीका (छठा कर्मग्रन्थ) पेज 172 में सम्यक्त्व मोहनीय का वेदन करते-करते जीव का काल कर चारों गतियों में जाने का उल्लेख है।

79 भेद अपर्याप्त ही लेने चाहिये, क्योंकि जीव को पर्याप्त होने में अन्तर्मुहूर्त (256 आवलिका से अधिक समय) लगता है। जबकि समकित मोहनीय की क्षपणा का काल इससे भी कम है। शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक जीव क्षायिक समकित को प्राप्त कर लेता है। उस समय तक वह जीव अपर्याप्त ही रहता है।

80. क्षयोपशम समकिती में 275 भेद (नारकी के 13, सन्नी तिर्यंच के 10 और 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त, 30 अकर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त = 90 मनुष्य के, 15 परमाधामी, 3 किल्विषी के अपर्याप्त-पर्याप्त = 36 को छोड़कर देवता के 162 भेद)

81. क्षायिक समकिती में जीव के भेद -168

प्रथम तीन नरक के अपर्याप्त-पर्याप्त

तिर्यंच में थलचर युगलिक का अपर्याप्त-पर्याप्त	02
मनुष्य में 15 कर्मभूमिज, 30 अकर्मभूमिज इन 45 के अपर्याप्त-पर्याप्त	90
देवगति में 35 वैमानिक (3 किल्विषी को छोड़कर) के अपर्याप्त-पर्याप्त	70

तीर्थंकर तीसरी नरक तक से आ सकते हैं, अतः अन्य पुष्ट प्रमाणों की उपलब्धि नहीं होने तक प्रवचन सारोद्धार गाथा 961-962 के उल्लेख को प्रधानता दी गई है। देवों के सम्बन्ध में कर्मसिद्धान्त व दिगम्बर परम्परा इन दोनों में वैमानिक देवों में ही क्षायिक समकित मानने की पुष्टि होती है। अतः देवों में वैमानिक के 35 भेदों में ही क्षायिक समकित मानी गई है।

82. एकान्त सम्यग्दृष्टि में 10 भेद (5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त-पर्याप्त)
83. एकान्त मिथ्यादृष्टि में 280 भेद (सातवीं नारकी का अपर्याप्त, 22 एकेन्द्रिय के, 3 विकलेन्द्रिय एवं 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त = 30 तिर्यंच के, 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के, 56 अन्तरद्वीपों के अपर्याप्त-पर्याप्त = 213 मनुष्य के, 15 परमाधामी और 3 किल्विषी के अपर्याप्त-पर्याप्त 36 देवता के)
84. एक दृष्टि में 290 भेद (10 एकान्त सम्यग्दृष्टि एवं 280 एकान्त मिथ्यादृष्टिवत्)
85. दो दृष्टि में 170 भेद (6 नारकी के अपर्याप्त, 5 सन्नी तिर्यंच, 5 असन्नी तिर्यंच और 3 विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त = 13 तिर्यंच के, 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त और 30 अकर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त = 75 मनुष्य के, 15 परमाधामी, 3 किल्विषी एवं 5 अनुत्तर विमान ये 23 छोड़कर 76 देवता के अपर्याप्त।)
86. तीन दृष्टि में 103 भेद - (मिश्र दृष्टिवत्)

10. ज्ञान द्वार

87. ज्ञानी और मति श्रुत ज्ञानी में 283 भेद (सम्यग् दृष्टिवत्)
88. अवधि ज्ञानी में 210 भेद (सातवीं नारकी का अपर्याप्त छोड़कर 13 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त, 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त और 36 एकान्त मिथ्यादृष्टि के छोड़कर देवता के 162 भेद)
89. मनःपर्यव ज्ञानी और केवलज्ञानी में 15 भेद (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)।
90. समुच्चय अज्ञानी और मति श्रुत अज्ञानी में 553 भेद (5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)
91. विभंगज्ञानी में 222 भेद (14 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच एवं 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त और 5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर, 188 देवता के)

11. दर्शन द्वार

92. चक्षु दर्शन में 537 भेद (563 में से 22 एकेन्द्रिय के, 2 बेइन्द्रिय और 2 तेइन्द्रिय के छोड़कर)
93. अचक्षु दर्शन में 563 भेद (पूर्ववत्)
94. अवधि दर्शन में 247 भेद (222 विभंग ज्ञानीवत्, 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त और पाँच अनुत्तर विमान के पर्याप्त अपर्याप्त 10 भेद)
95. केवल दर्शन में 15 भेद (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)

12. संयम द्वार

96. समुच्चय संयती, सामायिक चारित्र, सूक्ष्म संपराय चारित्र और यथाख्यात चारित्र में 15 भेद (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)
97. छेदोपस्थापनिक चारित्र और परिहार विशुद्धि चारित्र में 10 भेद (उपरोक्त 15 में से 5 महाविदेह के छोड़कर)
98. संयतासंयती में 20 भेद (15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त)
99. असंयती में 563 भेद (पूर्ववत्)
100. नो संयती, नो असंयती और नो संयतासंयती में जीव का भेद - नहीं

13. उपयोग द्वार

101. साकार उपयोग, अनाकार उपयोग में जीव के भेद 563 (पूर्ववत्)

14. आहारक द्वार

102. आहारक में 563 भेद (पूर्ववत्)
103. अनाहारक में 347 भेद (7 नारकी के अपर्याप्त, 24 तिर्यंच के अपर्याप्त, 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के, 101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त और 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त और 99 देवता के अपर्याप्त)

15. भाषक द्वार

104. भाषक में 220 भेद (7 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच, 5 असन्नी तिर्यंच, 3 विकलेन्द्रिय, 101 सन्नी मनुष्य और 99 देवता के, ये सब पर्याप्त)
105. अभाषक में 358 भेद (563 में से उपर्युक्त 220 छोड़ने पर शेष 343 एवं 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)

16. परीत द्वार

106. परीत दो प्रकार के होते हैं- 1. संसार परीत, 2. काय परीत। संसार परीत (ऐसे शुक्लपक्षी जीव जिन्होंने एक बार भी सम्यग्दर्शन का प्राप्त कर लिया है, वे संसार परीत कहलाते हैं। जिन जीवों ने अनन्तकाय को छोड़कर प्रत्येक काय को प्राप्त कर लिया है, और जब तक वे प्रत्येक काय में हैं, तब तक वे काय परीत कहलाते हैं। अनन्तकाय में जाने पर वे ही जीव काय अपरीत कहलाते हैं।) में 563 भेद (पूर्ववत्)। काय परीत में 559- 14 नारकी, 44 तिर्यंच, 303 मनुष्य, 198 देवता। काय अपरीत (निगोद में) में- 4 (सूक्ष्म व साधारण वनस्पतिकाय के अपर्याप्त और पर्याप्त)
107. संसार अपरीत में 553 भेद (5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)
108. नोपरीत नो अपरीत में जीव के भेद - नहीं।

17. पर्याप्त द्वार

109. पर्याप्त में 231 भेद (7 नारकी, 24 तिर्यंच, 101 सन्नी मनुष्य और 99 देवता, ये सब पर्याप्त)
110. अपर्याप्त में 332 भेद (563 में से उपर्युक्त 231 छोड़कर)
111. नो पर्याप्त नो अपर्याप्त में जीव का भेद - नहीं।

18. सूक्ष्म द्वार

112. सूक्ष्म में 10 भेद (सूक्ष्म पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति काय इन पाँच के अपर्याप्त-पर्याप्त)
113. बादर में 553 भेद (563 में से उपर्युक्त 10 छोड़कर)
114. नो सूक्ष्म नो बादर में जीव का भेद - नहीं।

19. सन्नी द्वार

115. सन्नी में 424 भेद (14 नारकी, 10 तिर्यंच के, 202 मनुष्य और 198 देवता के)
116. असन्नी में 191 भेद (पहली नारकी, 25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर के अपर्याप्त, 38 तिर्यंच के, 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के) पहली नारकी, भवनपति, वाणव्यन्तर में जब असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय उत्पन्न होता है तो वह अपर्याप्त अवस्था में असन्नी रहता है। क्योंकि अपर्याप्त अवस्था में वह असन्नी पंचेन्द्रिय प्रायोग्य कर्मों का बन्ध करता हैं, इस कारण से उसे उक्त भेदों के अपर्याप्त अवस्था में असन्नी माना जाता है।
117. नो सन्नी नो असन्नी में जीव के भेद 15 (15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त)

20. भवी द्वार

118. भवी में 563 भेद (पूर्ववत्)
119. अभवी में 553 भेद (563 में से 5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)
120. नो भवी नो अभवी में जीव का भेद - नहीं

21. चरम द्वार

121. चरम में 563 भेद (पूर्ववत्)
122. अचरम में 553 भेद (563 में से 5 अनुत्तर विमान के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर)

22. संहनन द्वार

123. व्रज-ऋषभ-नाराच संहनन में 212 भेद (10 सन्नी तिर्यंच के और 202 सन्नी मनुष्य के)
124. मध्यम के चार संहनन में 40 भेद (10 सन्नी तिर्यंच एवं 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त)
125. सेवार्तक संहनन में 179 भेद (48 तिर्यंच के और 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के और 30 मनुष्य के - पन्द्रह कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त-पर्याप्त)

23. संस्थान द्वार

126. समचतुरस्र संस्थान में 410 भेद (212 वज्र-ऋषभ-नाराच संहननवत् एवं 198 देवता के)
127. मध्यम के चार संस्थान में 40 भेद (मध्यम संहनन वत्)
128. हुण्डक संस्थान में 193 भेद (नपुंसकवेद वत्)

24. क्षेत्र द्वार

129. ऊँचा लोक में 122 भेद (2 बादर तेउकाय के छोड़कर 46 तिर्यंच के, पहले देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक 38 जाति के देवता के अपर्याप्त-पर्याप्त = 76 देवता के)
130. नीचालोक में 115 भेद- (14 नारकी, 48 तिर्यंच के, 3 मनुष्य (जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र की सलिलावती व वप्रा विजय नीचे लोक में 100 योजन तक गई हुई हैं, वहाँ रहने वाले मनुष्यों की अपेक्षा से गर्भज मनुष्य) के अपर्याप्त, पर्याप्त एवं सम्मूर्च्छिम, 10 भवनपति, 15 परमाधामी, इन 25 के अपर्याप्त-पर्याप्त = 50 देवता के)
131. तिरछालोक में 423 भेद (48 तिर्यंच के, 303 मनुष्य के, 16 वाणव्यन्तर, 10 जृम्भक, 10 ज्योतिषी, इनके अपर्याप्त-पर्याप्त = 72 देवता के)

132. जम्बूद्वीप में 75 भेद (48 तिर्यंच के, 1 भरत, 1 ऐरवत, 1 महाविदेह, 1 देवकुरू, 1 उत्तरकुरू, 1 हरिवास, 1 रम्यक्वास, 1 हैमवत, 1 ऐरण्यवत, इन 9 के अपर्याप्त, पर्याप्त और सम्मूर्च्छिम = 27 मनुष्य के)
133. धातकीखण्ड एवं अर्द्धपुष्करद्वीप में 102 भेद (48 तिर्यंच के, 2 भरत, 2 ऐरवत, 2 महाविदेह, 2 देवकुरू, 2 उत्तरकुरू, 2 हरिवास, 2 रम्यक्वास, 2 हैमवत, 2 ऐरण्यवत्, इनके अपर्याप्त, पर्याप्त और सम्मूर्च्छिम = 54 भेद मनुष्य के)
134. भरत-ऐरवत क्षेत्र में 51-51 भेद (48 तिर्यंच के और 3 मनुष्य के- अपर्याप्त, पर्याप्त और सम्मूर्च्छिम)
135. महाविदेह क्षेत्र में 57 भेद- 48 तिर्यंच, 9 मनुष्य (महाविदेह क्षेत्र, देवकुरू और उत्तरकुरू इन तीनों के मनुष्यों के अपर्याप्त, पर्याप्त और सम्मूर्च्छिम)
136. कालोदधि समुद्र और मेरु पर्वत में 46 भेद (बादर तेउकाय के अपर्याप्त-पर्याप्त को छोड़कर 46 तिर्यंच के)
137. लवण समुद्र में 216 भेद (48 तिर्यंच के, 56 अन्तर्द्वीपों के अपर्याप्त-पर्याप्त और सम्मूर्च्छिम = 168 मनुष्य के)
138. नन्दीश्वर द्वीप में 46 भेद (बादर तेउकाय के अपर्याप्त-पर्याप्त छोड़कर 46 तिर्यंच के)
139. अढ़ाई द्वीप में 351 भेद (48 तिर्यंच के और 303 मनुष्य के)
140. अढ़ाई द्वीप के बाहर 118 भेद (बादर तेउकाय के अपर्याप्त-पर्याप्त को छोड़कर 46 तिर्यंच के, 16 वाणव्यंतर, 10 जृम्भक, 10 ज्योतिषी इन 36 के अपर्याप्त-पर्याप्त = 72 देवता के)
141. सिद्ध शिला में- 12 भेद (10 सूक्ष्म और 2 बादर पृथ्वीकाय के = 12)
142. सिद्धशिला के ऊपर, सातवीं नरक के नीचे और लोक के चरमांत में 12 भेद (10 सूक्ष्म और 2 बादर वायुकाय के = 12 तिर्यंच के)

क्षेत्रद्वार के सम्बन्ध में ज्ञातव्य टिप्पणियाँ-

1. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के चतुर्थ वक्षस्कार के सूत्र संख्या 102 में देवकुरू, उत्तरकुरू को महाविदेह का क्षेत्र बतलाया गया है। इस अपेक्षा से महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य के 9 भेद लिये गये हैं।
2. कालोदधि समुद्र का जल शान्त है, वहाँ बड़वानल आदि नहीं होने से बादर तेउकाय की सम्भावना नहीं है। अतः तिर्यंच के 46 भेद लिये गये हैं।
3. जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के सूत्र 169 में उल्लेख है कि लवणसमुद्र का जल उछलने वाला तथा क्षुभित होने वाला है, वहाँ बड़वानल, पानी के टकराहट आदि से उत्पन्न होने वाली बादर तेउकाय मानी जाती है।
4. भगवती सूत्र शतक 14 उद्देशक 8 के अनुसार 10 जृंभक देव- वैताढ्य और कंचनगिरी पर मिलते हैं। किन्तु वहाँ उनके उत्पन्न होने का उल्लेख नहीं है अतः इन्हें वाणव्यन्तर के समान उत्पत्ति वाले मानकर इनके भेद तिरछे लोक में तथा अढ़ाई द्वीप के बाहर लिए है। प्रज्ञापना पद-2, लोकप्रकाश, जैनतत्त्व प्रकाश आदि में सभी व्यन्तरों की उत्पत्ति पहली नारकी में 1000 योजन की ऊपर की ठीकरी के अन्तर्गत बतलाई गई हैं। रहने को तो भवनपति की लक्ष्मी आदि देवियाँ द्रहों में व अन्य अनेक लोकपालादि देव अढ़ाई द्वीप में रह सकते हैं। तथापि उनकी उत्पत्ति नहीं होने से उन्हें अढ़ाई द्वीप में लेना उचित प्रतीत नहीं होता।
5. ज्योतिषी देवों के प्रकाश की अपेक्षा अढ़ाई द्वीपादि में गिनने पर भी उन्हें भरत-ऐरवत क्षेत्र में नहीं लिया। अतः शेष में भी छोड़ा जा सकता है। महाविदेह में त्रिजृंभक को भी नहीं गिना गया अतः उन्हें भी जम्बू द्वीपादि में नहीं लेना ही उपयुक्त लगता है। अतः इनमें देवों के भेद नहीं लिये गये हैं। क्षेत्र द्वार में देवों के भेद उनकी उत्पत्ति के आधार पर लिए गये हैं।
6. अढ़ाई द्वीप के बाहर में- भूमिगत अढ़ाई द्वीप को छोड़कर शेष तिरछा लोक पूरा गिन लिया गया है, अतः जीव के 118 भेद लिये गये हैं।

तत्त्व केवली गम्य

25. शाश्वत द्वार

विरह पड़ने पर भी जो जीव के भेद विद्यमान रहे, हमेशा मिले, वे शाश्वत कहलाते हैं। जो कभी मिले, कभी न मिले वे जीव के भेद अशाश्वत कहलाते है।

143. शाश्वत में 250 भेद (7 नारकी के पर्याप्त, 5 सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त छोड़कर 43 तिर्यंच के, 101 सन्नी मनुष्य के पर्याप्त, 99 देवता के पर्याप्त) 5 सन्नी तिर्यंच के अपर्याप्त को शाश्वत नहीं माना है, क्योंकि इनका उत्पत्ति का विरह 12 मुहूर्त तक का हो सकता है। अर्थात् 12 मुहूर्त तक कोई जीव इनमें उत्पन्न ही न हो तो अपर्याप्त अवस्था में उस समय कोई जीव नहीं मिलेंगे। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय ये सभी अपर्याप्त अवस्था में शाश्वत माने गये है। यद्यपि इनका विरह अन्तर्मुहूर्त का पड़ता है, फिर भी अपर्याप्त अवस्था का अन्तर्मुहूर्त बड़ा होने के कारण में विरहकाल में भी अपर्याप्त अवस्था में मिल जाते है, अतः इन्हें अपर्याप्त अवस्था में भी शाश्वत माना गया है।
144. अशाश्वत में 313 भेद (563 भेदों में से शाश्वत के उपर्युक्त 250 भेद छोड़कर)

26. अमर द्वार

145. अमर में 192 भेद (7 नारकी के, 86 युगलिक मनुष्य के और 99 देवता के ये सब अपर्याप्त) जिस अवस्था में रहते जीव मरण को प्राप्त नहीं हो, उन्हें 'अमर' कहते हैं। ये सभी 192 भेद वाले जीव अपर्याप्त अवस्था में नहीं मरते हैं, इसलिए 'अमर' माने गये हैं।

146. मरने वाले में 371 भेद (जीव के 563 भेदों में से उपर्युक्त 192 छोड़कर)

27. गर्भज द्वार

147. गर्भज में 212 भेद (10 सन्नी तिर्यंच के और 202 सन्नी मनुष्य के)

148. नो गर्भज में 351 भेद (14 नारकी के, 10 सन्नी तिर्यंच को छोड़कर 38 तिर्यंच के, 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के और 198 देवता के)

।। जीव धड़े का थोकड़ा समाप्त ।।

102 बोल का बासठिया

श्री पन्नवणा सूत्र के तीसरे पद में 22 द्वारों का वर्णन है। वह बासठिया युक्त इस प्रकार हैं-

द्वार- 1. जीव, 2. गति, 3. इन्द्रिय, 4. काय, 5. योग, 5. वेद, 7. कषाय, 8. लेश्या, 9. दृष्टि, 10. सम्यक्त्व, 11. ज्ञान, 12. दर्शन, 13. संयम, 14. उपयोग, 15. आहारक, 16. भाषक, 17. परीत, 18. पर्याप्त, 19. सूक्ष्म, 20. संज्ञी, 21. भव्य और 22. चरम।

1. जीव द्वार

		जीव	गुणस्थान0	योग	उपयोग	लेश्या
1.	समुच्चय जीव में	14	14	15	12	6
2.	नरक में	3	4	11	9	3
3.	तिर्यंच में	14	5	13	9	6
4.	मनुष्य में	3	14	15	12	6
5.	देव में	3	4	11	9	6
6.	सिद्ध में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े मनुष्य, उनसे नारकी असंख्यात गुण, उनसे देव असंख्यात गुण, उनसे सिद्ध अनंत गुण, उनसे तिर्यंच अनन्त गुण और उनसे समुच्चय जीव विशेषाधिक हैं।

2. गति द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	नरक गति में	3	4	11	9	3
2.	तिर्यंच गति में	14	5	13	9	6
3.	तिर्यंचिनी में	2	5	13	9	6
4.	मनुष्य गति में	3	14	15	12	6
5.	मनुष्यिनी में	2	14	13	12	6
6.	देव गति में	3	4	11	9	6
7.	देवी में	2	4	11	9	4
8.	सिद्ध गति में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़ी मनुष्यिनी, उनसे मनुष्य असंख्यात गुण, उनसे नारकी असंख्यात गुण, उनसे तिर्यंचिनी असंख्यात गुण, उनसे देव असंख्यात गुण, उनसे देवी संख्यात गुण, उनसे सिद्ध अनन्त गुण और उनसे तिर्यंच अनन्त गुण हैं।

3. इन्द्रिय द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सइन्द्रिय में	14	12	15	10	6
2.	एकेन्द्रिय में	4	1	5	3	4
3.	बेइन्द्रिय में	2	2	4	5	3
4.	तेइन्द्रिय में	2	2	4	5	3
5.	चौरेन्द्रिय में	2	2	4	6	3
6.	पंचेन्द्रिय में	4	12	15	10	6
7.	अनिन्द्रिय में	1	2	7	2	1[2]

[2] अनिन्द्रिय में 13वाँ, 14 वाँ गुणस्थान होने से एक शुक्ललेश्या पाई जाती है।

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय, उनसे चौरेन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अनिन्द्रिय अनन्त गुण, उनसे एकेन्द्रिय अनन्त गुण और उनसे सइन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

4. काय द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सकाय में	14	14	15	12	6
2.	पृथ्वीकाय में	4	1	3	3	4
3.	अप्काय में	4	1	3	3	4
4.	तेउकाय में	4	1	3	3	3
5.	वायुकाय में	4	1	5	3	3
6.	वनस्पतिकाय में	4	1	3	3	4
7.	त्रसकाय में	10	14	15	12	6
8.	अकाय में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े त्रसकाय, उनसे तेउकाय असंख्यात गुण, उनसे पृथ्वीकाय विशेषाधिक, उनसे अप्काय विशेषाधिक, उनसे वायुकाय विशेषाधिक, उनसे अकाय अनन्त गुण, उनसे वनस्पतिकाय अनन्त गुण और उनसे सकाय विशेषाधिक हैं।

5. योग द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सयोगी में	14	13	15	12	6
2.	मन योगी में	1	13	14	12	6
3.	वचन योगी में	5	13	14	12	6
4.	काययोगी में	14	13	15	12	6
5.	अयोगी में	1	1	0	2	0

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े मन-योगी, उनसे वचन-योगी असंख्यात गुण, उनसे अयोगी अनन्त गुण, उनसे काय-योगी अनन्त गुण और उनसे सयोगी विशेषाधिक हैं।

6. वेद द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सवेदी में	14	9	15	10	6
2.	पुरुषवेदी में	2	9	15	10	6
3.	स्त्रीवेदी में	2	9	13	10	6
4.	नपुंसकवेदी में	14	9	15	10	6
5.	अवेदी में	1	6	11	9	1

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े पुरुषवेदी, उनसे स्त्रीवेदी संख्यात गुण, उनसे अवेदी अनन्त गुण, उनसे नपुंसकवेदी अनन्त गुण और उनसे सवेदी विशेषाधिक हैं।

7. कषाय द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सकषायी में	14	10	15	10	6
2.	क्रोध कषायी में	14	9	15	10	6
3.	मान कषायी में	14	9	15	10	6
4.	माया कषायी में	14	9	15	10	6

5.	लोभ कषायी में	14	10	15	10	6
6.	अकषायी में	1	4	11	9	1

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े अकषायी, उनसे मानी अनन्त गुण, उनसे क्रोधी विशेषाधिक, उनसे मायी विशेषाधिक, उनसे लोभी विशेषाधिक और उनसे सकषायी विशेषाधिक हैं।

8. लेश्या द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सलेश्यी में	14	13	15	12	6
2.	कृष्ण लेश्यी में	14	6	15	10	1
3.	नील लेश्यी में	14	6	15	10	1
4.	कापोत लेश्यी में	14	6	15	10	1
5.	तेजो लेश्यी में	3	7	15	10	1
6.	पद्म लेश्यी में	2	7	15	10	1
7.	शुक्ल लेश्यी में	2	13	15	12	1
8.	अलेश्यी में	1	1	0	2	0

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े शुक्ललेश्यी, उनसे पद्मलेश्यी संख्यात गुण, उनसे तेजोलेश्यी संख्यात गुण, उनसे अलेश्यी अनन्त गुण, उनसे कापोतलेश्यी अनन्त गुण, उनसे नीललेश्यी विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेश्यी विशेषाधिक और उनसे सलेश्यी विशेषाधिक हैं।

9. दृष्टि द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सम्यग्दृष्टि में	6	12	15	9	6
2.	मिथ्यादृष्टि में	14	1	13	6	6
3.	मिश्रदृष्टि में	1	1	10	6	6

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े मिश्रदृष्टि, उनसे सम्यग्दृष्टि अनन्त गुण और उनसे मिथ्यादृष्टि अनन्त गुण हैं।

10. सम्यक्त्व द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सास्वादन समकिती में	6	1	13	6	6
2.	क्षयोपशम समकिती में	2	4	15	7	6
3.	वेदक समकिती में	2	4	11	7	6
4.	उपशम समकिती में	2	8	13	7	6
5.	क्षायिक समकिती में	2	11	15	9	6

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े सास्वादन-समकिती, उनसे उपशम-समकिती संख्यात गुण, उनसे क्षयोपशम-समकिती असंख्य गुण, उनसे वेदक-समकिती विशेषाधिक, उनसे क्षायिक-समकिती अनन्त गुण और उनसे समुच्चय समकिती विशेषाधिक[3]।

[3] उपशम समकिती से मिश्रदृष्टि असंख्यात गुणा होते हैं, उनसे क्षयोपशम समकिती असंख्यात गुण हैं। इसी प्रकार समुच्चय समकिती से मिथ्यादृष्टि अनन्त गुणा हैं। (समकित का द्वार होने से ये दो बोल नहीं दिये हैं, लेकिन जानकारी की दृष्टि से दिये जा रहे हैं।)

11. ज्ञान द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सज्ञानी में	6	12	15	9	6
2.	मति-श्रुतज्ञानी में	6	10	15	7	6
3.	अवधिज्ञानी में	2	10	15	7	6
4.	मनःपर्यायज्ञानी में	1	7	14	7	6
5.	केवलज्ञानी में	1	2	7	2	1
6.	मतिश्रुतअज्ञानी में	14	2	13	6	6
7.	विभंग ज्ञानी में	2	2	13	6	6

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े मनःपर्याय ज्ञानी, उनसे अवधिज्ञानी असंख्यात गुण, उनसे मतिश्रुत ज्ञानी परस्पर तुल्य और विशेषाधिक, उनसे विभंग ज्ञानी असंख्यात गुण, उनसे केवलज्ञानी अनन्त गुण, उनसे सज्ञानी विशेषाधिक, उनसे मतिश्रुत अज्ञानी परस्पर तुल्य और अनन्त गुण[4]।

12. दर्शन द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	चक्षुदर्शनी में	6	12	14	10	6
2.	अचक्षुदर्शनी में	14	12	15	10	6
3.	अवधिदर्शनी में	2	12	15	10	6
4.	केवलदर्शनी में	1	2	7	2	1

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े अवधिदर्शनी, उनसे चक्षुदर्शनी असंख्यात गुण, उनसे केवलदर्शनी अनन्त गुण और उनसे अचक्षुदर्शनी अनन्त गुण हैं।

13. संयम द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	समुच्चय संयत में	1	9	15	9	6
2.	सामायिक संयत में	1	4	14	7	6
3.	छेदोपस्थापनीय संयत में	1	4	14	7	6
4.	परिहारविशुद्धि संयत में	1	2	9	7	3
5.	सूक्ष्म-संपराय संयत में	1	1	9	7	1
6.	यथाख्यात संयत में	1	4	11	9	1
7.	संयतासंयत में	1	1	12	6	6
8.	असंयत में	14	4	13	9	6
9.	नोसंयत नोअसंयत नो संयतासंयत में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े सूक्ष्म संपराय संयत, उनसे परिहारविशुद्धि संयत संख्यात गुण, उनसे यथाख्यात संयत संख्यात गुण, उनसे छेदोपस्थापनीय संयत संख्यात गुण, उनसे सामायिक संयत संख्यात गुण, उनसे समुच्चय संयत विशेषाधिक, उनसे संयतासंयत असंख्य गुण, उनसे नो संयत नो असंयत नो संयतासंयत अनन्त गुण और उनसे असंयत अनन्त गुण हैं।

[4] पुरानी पुस्तकों में मतिश्रुत अज्ञानी से समुच्चय अज्ञानी विशेषाधिक लिखा हुआ था लेकिन यह उचित नहीं है, क्योंकि विभंग ज्ञानी नियम से मतिश्रुत अज्ञानी होते ही हैं। मूल में भी यह बोल नहीं है।

14. उपयोग द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. साकार उपयोगी में	14	14	15	12	6
2. अनाकार उपयोगी में	14	13	15	12	6

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े अनाकार उपयोगी और उनसे साकार उपयोगी संख्यात गुण।

15. आहारक द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. आहारक में	14	13	14	12	6
2. अनाहारक में	8	5	1	10	6

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े अनाहारक, उनसे आहारक असंख्यात गुण हैं।

16. भाषक द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. भाषक में	5	13	14	12	6
2. अभाषक में	10	5	5	11	6

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े भाषक, उनसे अभाषक अनन्त गुण हैं।

17. परीत द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. परीत में	14	14	15	12	6
2. अपरीत में	14	1[5]	13	6	6
3. नो परीत नो अपरीत में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े परीत, उनसे नो परीत नो अपरीत अनन्त गुण और उनसे अपरीत अनन्त गुण हैं।

18. पर्याप्त द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. पर्याप्त में	7	14	15	12	6
2. अपर्याप्त में	7	3	5	9	6
3. नो पर्याप्त नो अपर्याप्त में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े नो पर्याप्त नो अपर्याप्त, उनसे अपर्याप्त अनन्त गुण और उनसे पर्याप्त असंख्यात गुण हैं।

19. सूक्ष्म द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. सूक्ष्म में	2	1	3	3	3
2. बादर में	12	14	15	12	6
3. नो सूक्ष्म नो बादर में	0	0	0	2	0

[5] अपरीत में अभव्य जीव तथा कृष्ण पाक्षिक जीव आने से एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े नो सूक्ष्म नो बादर, उनसे बादर अनन्त गुण और उनसे सूक्ष्म असंख्यात गुण हैं।

20. संज्ञी द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. संज्ञी में	2	12	15	10	6
2. असंज्ञी में	12	2	6	6	4
3. नो संज्ञी नो असंज्ञी में	1	2	7	2	1

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े संज्ञी, उनसे नो संज्ञी नो असंज्ञी अनन्त गुण और उनसे असंज्ञी अनन्त गुण हैं।

21. भव्य द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. भव्य में	14	14	15	12	6
2. अभव्य में	14	1[6]	13	6	6
3. नो भव्य नो अभव्य में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े अभव्य, उनसे नो भव्य नो अभव्य अनन्त गुण और उनसे भव्य अनन्त गुण हैं।

22. चरम द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. चरम में	14	14	15	12	6
2. अचरम में	14	1[7]	13	8	6

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े अचरम, उनसे चरम अनन्त गुण हैं।

102 बोल के बासठिये से सम्बन्धित ज्ञातव्य

1. पहली नारकी, भवनपति व वाणव्यन्तर की अपेक्षा से नारकी व देवों में जीव के 3 भेद माने जाते हैं। असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय काल करके जब इन स्थानों में आकर उत्पन्न होते हैं, तब वे अपर्याप्त अवस्था में कुछ देर तक असन्नी रहते हैं, बाद में सन्नी बनते हैं। बाटा बहती अवस्था में रहते हुए वे असन्नी पंचेन्द्रिय के प्रायोग्य ही 7 कर्मों का बन्ध करते हैं। अतः असन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त, सन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त तथा पर्याप्त ये तीन भेद बतलाये गये हैं।
2. यद्यपि असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय मरकर युगलिक मनुष्य-तिर्यंचों में भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु वहाँ भव स्वभाव से बाटा बहती अवस्था में, अपर्याप्त अवस्था में भी सन्नी पंचेन्द्रिय के योग्य ही कर्मों का बन्ध करते हैं, इसलिए उन्हें सन्नी ही माना जाता है।
3. असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय काल करके यद्यपि देवी के रूप में भी उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु यहाँ पर उनकी गणना देवी में न करके देवों में ही की जाती है। जिस प्रकार से 98 बोल के बासठिये में नपुंसक वेदी सन्नी मनुष्यों की गणना गर्भज मनुष्यों के अन्तर्गत की जाती है, उसी प्रकार असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के जीवों की गणना देवगति में आने पर भाव नपुंसक वेद की अवस्था तक देवों के अन्तर्गत की जानी चाहिए।
4. कर्मग्रन्थ भाग-4 के अनुसार स्त्रीवेद (स्त्रीलिंग) में तथा उपशम समकित इन दोनों में आहारक काययोग व आहारक मिश्र काययोग, ये दो योग नहीं होते हैं। अतः इन दोनों में 13 योग माने गये हैं।
5. नारकी-देवों के अपर्याप्त अवस्था में 3 योग होते हैं- वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र और कार्मण। इनमें भी बाटा बहती अवस्था जिसे अपर्याप्त-अनाहारक कहा जाता हैं, उसमें एक मात्र कार्मण काय योग रहता हैं तथा अपर्याप्त आहारक में अर्थात् उत्पत्ति समय से लेकर शरीर पर्याप्ति पूर्ण न होने तक वैक्रिय मिश्र काय योग तथा शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद से वैक्रिय काय योग माना जाता है।

---

[6] अभव्य में एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

[7] अचरम में एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

6. नारकी-देवों में वैक्रिय मिश्र काय योग शाश्वत माना जाता हैं, इस अपेक्षा से पर्याप्त अवस्था में वैक्रिय मिश्र (वैक्रिय शरीर के द्वारा वैक्रिय पुद्गलों को ग्रहण करके बनाया जाना वाला उत्तर वैक्रिय-सजातीय मिश्र) काय योग माना जाता है।
7. चौरेन्द्रिय-पंचेन्द्रिय जीवों में बाटा बहती अवस्था में चक्षुदर्शन की प्रवृत्ति नहीं होने से चक्षुदर्शन का उपयोग नहीं माना जाता। अपर्याप्त अवस्था में जब इन जीवों में इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है, तबसे उनमें चक्षुदर्शन का उपयोग माना जाता है।
8. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पर्याप्तक जीवों में किसी-किसी में अवधिज्ञान-विभंगज्ञान हो सकता है। वह भी संख्यात वर्षायुष्क में ही हो सकता है, असंख्यात वर्षायुष्कों में नहीं होता।
9. संख्यात वर्ष की आयु वाले (एक क्रोड पूर्व वर्ष तक की आयु वाले) गर्भज मनुष्यों में बारहवें गुणस्थान तक इन्द्रियों का उपयोग जानने-देखने आदि में होता है, इसलिए वे सइन्द्रिय कहलाते हैं। 13, 14वें गुणस्थान वालों में जानने-देखने-चिन्तन-मनन करने रूप कार्यों में इन्द्रिय व मन का उपयोग नहीं होने से वे अनिन्द्रिय कहलाते हैं। अनिन्द्रियों में केवली की अपेक्षा औदारिक काय योग, सत्य व व्यवहार मन योग, सत्य व व्यवहार भाषा ये पाँच योग होते हैं तथा केवली समुद्घात की अपेक्षा औदारिक मिश्र व कार्मण काययोग ये दो योग होते हैं। इस प्रकार कुल 7 योग होते हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन ये 2 उपयोग तथा 13वें गुणस्थान की अपेक्षा 1 शुक्ललेश्या इनमें होती है।
10. पृथ्वी, अप्, तेउ और वनस्पति इन चार स्थावरों में तीन योग तथा वायुकाय में वैक्रिय-वैक्रिय मिश्र मिलाने पर कुल पाँच योग होते हैं। वैक्रिय-वैक्रिय मिश्र काय योग, वायुकाय में भी पर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों में ही होता है।
11. बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, असन्नी पंचेन्द्रिय इनके अपर्याप्त तथा सन्नी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त, इन 6 जीव के भेदों में सास्वादन समकित मिलती है। शेष सभी समकित सन्नी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त इन 2 भेदों में ही मिलती है।
12. वेदक समकित से तात्पर्य क्षायिक की वेदक से हैं। क्षायिक समकित पाने के एक समय पूर्व की अवस्था अर्थात् समकित मोहनीय के चरम दलिक का वेदन, वेदक समकित कहलाती है। इसमें 4 से 7 गुणस्थान, 4 मन के, 4 वचन के, औदारिक, औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र ये 11 योग होते हैं। जो कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य पर्याप्त अवस्था में ही क्षायिक समकित प्राप्ति की प्रक्रिया प्रारंभ करें तथा वहीं पूर्ण भी कर लें तो उसकी अपेक्षा 4 मन के, 4 वचन के, 1 औदारिक काय योग ये 9 योग होते है। यदि पूर्वबद्धायु हो तो प्रक्रिया के अन्तर्गत ही मरण प्राप्त करके आयु बद्धानुसार चारों गतियों में जहाँ-जहाँ क्षायिक समकित मिलती हो, वहाँ उत्पन्न होते हैं, तथा शरीर पर्याप्ति पूर्ण करने के पहले-पहले अपर्याप्त अवस्था में क्षायिक समकित पाने के 1 समय पहले वेदक समकित वाले होते हैं। उनमें नारकी-देवों में उत्पन्न होने वालों की अपेक्षा वैक्रिय मिश्र काय योग तथा मनुष्य-तिर्यंच में युगलिकों में उत्पन्न होने वालों की अपेक्षा औदारिक मिश्र काय योग होता है। पर्याप्त अवस्था भावी 9 तथा अपर्याप्त अवस्था भावी 2 इस प्रकार कुल 11 योग वेदक समकित में माने जाते हैं।
13. क्षयोपशम, उपशम व क्षायिक ये तीनों ही समकित चारों गति के सन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्तकों में मिल जाती हैं। क्षयोपशम समकित में 4 से 7 तक गुणस्थान तथा सभी पन्द्रह योग मिल सकते हैं। उपशम समकित में 4 से 11 तक गुणस्थान तथा कर्मग्रन्थ भाग-4 गाथा 26 के अनुसार आहारक-आहारक मिश्र काय योग, इन दो योगों को छोड़कर शेष 13 योग मिल सकते हैं। क्षायिक समकित में 4 से 14 तक गुणस्थान तथा सभी पन्द्रह योग मिल सकते हैं।
14. मनःपर्याय ज्ञानी नियमा साधु होते हैं। उनमें छठे से लेकर बारहवें तक सात गुणस्थान पाये जाते हैं। सिद्धान्त के मतानुसार कार्मण काय योग अनाहारक अवस्था में ही होता है, मन पर्यायज्ञानी आहारक ही होते हैं, अतः इनमें कार्मण काय योग को छोड़कर शेष 14 योग पाये जा सकते हैं।
15. संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी पर्याप्तक मनुष्य ही संयत होते हैं। सामायिक व छेदोपस्थापनीय संयत में 6 से 9 तक 4 गुणस्थान, कार्मण योग को छोड़कर 14 योग तथा 4 ज्ञान-3 दर्शन ये 7 उपयोग पाये जाते हैं। परिहारविशुद्धि संयत में छठा-सातवाँ ये दो गुणस्थान ही मिलते हैं। सूक्ष्म संपराय संयत में एक मात्र दसवाँ गुणस्थान होता है। इसमें यद्यपि 4 ज्ञान-3 दर्शन इन 7 उपयोगों का क्षयोपशम रहता है, किन्तु इनमें प्रवृत्ति 4 ज्ञान की ही मानी जाती है।

    संयतासंयत में 3 ज्ञान, 3 दर्शन ये 6 उपयोग हो सकते हैं, जबकि असंयत में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन ये 9 उपयोग हो सकते हैं।
16. अनाकार उपयोग में दसवें गुणस्थान को छोड़कर शेष 13 गुणस्थान होते है किन्तु साकार उपयोगी में सभी 14 गुणस्थान होते हैं। दसवें गुणस्थान में जो भी जीव प्रवेश करता है, वह साकार उपयोग में ही प्रवेश करता है। वहाँ साकार उपयोग का अन्तर्मुहूर्त काल समाप्त होने के पहले ही दसवें गुणस्थान की अन्तर्मुहूर्त की स्थिति पूर्ण हो जाती है, इसलिए दसवें गुणस्थान में अनाकार उपयोग नहीं माना जाता। इससे यह भी फलित होता है कि दसवें गुणस्थान की स्थिति का अन्तर्मुहूर्त छोटा है तथा साकार उपयोग का अन्तर्मुहूर्त बड़ा है।
17. मरण होने पर एक गति से दूसरी गति में विग्रह गति से जाने पर (बाटा बहती अवस्था में) जीव अनाहारक हो जाता है, अतः 1, 2, 4 ये तीन गुणस्थान अनाहारक में भी माने जाते हैं। 13वें गुणस्थान में केवली समुद्घात के तीसरे-चौथे-पाँचवें

समय में तथा चौदहवें गुणस्थान में जीव अनाहारक ही रहता है, अतः 1, 2, 4, 13, 14 ये पाँच गुणस्थान अनाहारक माने गये हैं।

एक मात्र चौदहवाँ गुणस्थान को छोड़कर शेष सभी गुणस्थान वाले जीव आहारक हो सकते हैं।

18. ऐसे भवी-शुक्लपक्षी जीव, जिन्होंने एक बार भी समकित को प्राप्त कर लिया है, वे परीत कहलाते हैं। अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि जीव जिनका कभी भी पहला गुणस्थान छूटा ही नहीं हैं, वे सभी अपरीत कहलाते हैं।
अपरीत जीवों में पहला गुणस्थान, आहारक-आहारक मिश्र को छोड़कर शेष 13 योग, 3 अज्ञान, 3 दर्शन ये 6 उपयोग तथा लेश्या छहों मिल सकती हैं।
19. परिहार विशुद्धि चारित्र में यद्यपि छठा-सातवां गुणस्थान होता है, किन्तु फिर भी परिहार विशुद्धि चारित्र के धारक सन्त भगवन्त स्वाभाविक रूप से ही किसी भी प्रकार की लब्धि का प्रयोग नहीं करते। अतः इनमें 4 मन के, 4 वचन के, 1 औदारिक काय योग, ये 9 योग ही पाये जाते हैं।
20. पर्याप्त द्वार में अपर्याप्त जीवों में लब्धि अपर्याप्त तथा करण अपर्याप्त दोनों तरह के अपर्याप्त जीव समझने चाहिए।
21. असंज्ञी जीवों में प्रथम दो गुणस्थान, औदारिक-औदारिक मिश्र, वैक्रिय-वैक्रिय मिश्र, कार्मण काय और व्यवहार भाषा ये छह योग हो सकते हैं। 2 ज्ञान, 2 अज्ञान तथा 2 दर्शन ये 6 उपयोग होते है। लेश्याओं में प्रथम 4 लेश्याएँ मिल सकती हैं।
22. अभव्य जीवों में आहारक-आहारक मिश्र इन दो योगों को छोड़कर शेष 13 योग तथा 3 अज्ञान-3 दर्शन ये 6 उपयोग मिल सकते हैं।
23. अचरम जीवों में अभव्य तथा सिद्ध दोनों का समावेश किया जाता है। इसीलिए अचरम में 3 अज्ञान-3 दर्शन ये 6 उपयोग तो अभव्य जीवों की अपेक्षा तथा केवलज्ञान-केवलदर्शन ये 2 उपयोग सिद्धों की अपेक्षा, इस प्रकार कुल 8 उपयोग हो सकते हैं।

आहार पद का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र 28वां पद उद्देशक 1)

आहार दो प्रकार का होता है- आभोग निर्वर्तित और अनाभोग निर्वर्तित। इच्छापूर्वक किया गया आहार आभोग निर्वर्तित है और इच्छा बिना किया गया आहार अनाभोग निर्वर्तित है।

क्र. सं.	जीवों के नाम	आहारेच्छा का जघन्य काल	आहारेच्छा का उत्कृष्ट काल
1.	नारकी	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
2.	पाँच स्थावर	प्रति समय	प्रति समय
3.	तीन विकलेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
4.	तिर्यंच पंचेन्द्रिय	अन्तर्मुहूर्त	दो दिन
5.	मनुष्य	अन्तर्मुहूर्त	तीन दिन
6.	असुरकुमार	एक दिन	एक हजार वर्ष से कुछ अधिक समय
7.	नव निकाय, व्यन्तर	एक दिन	पृथक्त्व दिवस
8.	ज्योतिषी	पृथक्त्व दिवस	पृथक्त्व दिवस
9.	पहला देवलोक	पृथक्त्व दिवस	दो हजार वर्ष
10.	दूसरा देवलोक	पृथक्त्व दिवस से कुछ अधिक	दो हजार वर्ष से कुछ अधिक
11.	तीसरा देवलोक	दो हजार वर्ष	सात हजार वर्ष
12.	चौथा देवलोक	दो हजार वर्ष से कुछ अधिक	सात हजार वर्ष से कुछ अधिक
13.	पाँचवाँ देवलोक	7 हजार वर्ष	10 हजार वर्ष
14.	छठा देवलोक	10 हजार वर्ष	14 हजार वर्ष
15.	सातवाँ देवलोक	14 हजार वर्ष	17 हजार वर्ष
16.	आठवाँ देवलोक	17 हजार वर्ष	18 हजार वर्ष
17.	नवां देवलोक	18 हजार वर्ष	19 हजार वर्ष
18.	दसवां देवलोक	19 हजार वर्ष	20 हजार वर्ष
19.	ग्यारहवां देवलोक	20 हजार वर्ष	21 हजार वर्ष
20.	बारहवाँ देवलोक	21 हजार वर्ष	22 हजार वर्ष
21.	पहला ग्रैवेयक	22 हजार वर्ष	23 हजार वर्ष
22.	दूसरा ग्रैवेयक	23 हजार वर्ष	24 हजार वर्ष
23.	तीसरा ग्रैवेयक	24 हजार वर्ष	25 हजार वर्ष
24.	चौथा ग्रैवेयक	25 हजार वर्ष	26 हजार वर्ष
25.	पाँचवा ग्रैवेयक	26 हजार वर्ष	27 हजार वर्ष
26.	छठा ग्रैवेयक	27 हजार वर्ष	28 हजार वर्ष
27.	सातवाँ ग्रैवेयक	28 हजार वर्ष	29 हजार वर्ष
28.	आठवाँ ग्रैवेयक	29 हजार वर्ष	30 हजार वर्ष
29.	नवां ग्रैवेयक	30 हजार वर्ष	31 हजार वर्ष
30.	चार अनुत्तर विमान	31 हजार वर्ष	33 हजार वर्ष
31.	सर्वार्थसिद्ध विमान	अजघन्य अनुत्कृष्ट	33 हजार वर्ष

ज्ञातव्य :-

1. यहाँ जो आहारेच्छा का जघन्य उत्कृष्ट काल बतलाया गया है, वह आभोग निर्वतित अर्थात् इच्छा पूर्वक आहार ग्रहण करने की अपेक्षा से समझना चाहिए। अन्यथा अनाभोग अर्थात् बिना इच्छा के तो आहार के पुद्गल सभी जीवों में प्रति समय निरन्तर ग्रहण होते रहते हैं।
2. देवताओं में यह कहा जा सकता है कि जितने सागरोपम की स्थिति हैं उनमें उतने ही हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

3. नैरयिक अचित्त पुद्गलों का आहार करते हैं, सचित्त और मिश्र का आहार नहीं करते। नैरयिक की तरह देवता के तेरह दंडक कहना। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य-औदारिक के ये दस दंडक सचित्त, अचित्त, मिश्र-तीनों प्रकार का आहार करते हैं।
4. नैरयिक लोमाहारी-लोमाहार करने वाले हैं, प्रक्षेपाहारी (कवल आहारी) नहीं हैं। नैरयिक की तरह देवता के 13 दण्डक और पांच स्थावर भी लोमाहारी हैं। तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य लोमाहारी और प्रक्षेपाहार- दोनों आहार करते हैं। **लोम आहार**- शरीर पर्याप्ति होने के बाद रोमों (त्वचा) के द्वारा होने वाला आहार लोमाहार कहलाता है। वह आभोग, अनाभोग दोनों प्रकार का होता है। **प्रक्षेपाहार (कवलाहार)**- मुख से या नली आदि से इंजेक्शन आदि से शरीर में आहार डालना ग्लूकोज आदि चढ़ाना प्रक्षेपाहार कहलाता है।
5. **ओज आहारी या मनोभक्षी आहारी**- उत्पत्ति देश में जो आहार योग्य पुद्गलों का समूह है उसका आहार करने वाले ओज आहारी कहलाते हैं। यह आहार उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर शरीर पर्याप्ति के अपर्याप्तावस्था तक होता है। मन में उत्पन्न इच्छा से मन से आहार करने वाले मनोभक्षी आहारी कहलाते हैं। मनोभक्षी आहारी में ऐसी शक्ति होती है कि वे मन से अपने शरीर को पुष्ट करने वाले पुद्गलों का आहार करते हैं और आहार करने के पश्चात् वे तृप्ति रूप परम सन्तोष का अनुभव करते हैं। नैरयिक ओज आहारी हैं, वे मनोभक्षी आहारी नहीं होते। औदारिक के दस दण्डक भी ओज आहारी हैं। देवता के तेरह दण्डक ओज आहारी हैं (उत्पन्न होने के समय) और मनोभक्षी आहारी भी हैं।
6. तिर्यंच पंचेन्द्रिय में आहारेच्छा का उत्कृष्ट काल दो दिन बतलाया वह देवकुरू-उत्तरकुरू क्षेत्र में उत्पन्न तिर्यंच युगलिकों की अपेक्षा से समझना चाहिए।
7. मनुष्यों में आहारेच्छा का उत्कृष्ट काल तीन दिन बतलाया वह देवकुरू-उत्तरकुरू क्षेत्र में उत्पन्न मनुष्य युगलिकों की अपेक्षा से समझना चाहिए।

आत्मारम्भी परारम्भी का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक 1, उद्देशक 1)

1. अहो भगवन् ! क्या जीव आत्मारम्भी है या परारम्भी है या तदुभयारम्भी है या अनारम्भी है ?

हे गौतम ! जीव के दो भेद हैं- संसार समापन्नक यानी संसारी और असंसार समापन्नक यानी सिद्ध। सिद्ध भगवान् न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी हैं। संसारी जीवों के दो भेद हैं- संयति और असंयति। संयति के दो भेद हैं-प्रमादी और अप्रमादी। अप्रमादी संयति न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। प्रमादी के दो भेद हैं- शुभयोगी और अशुभयोगी। शुभयोगी भी न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। अशुभयोगी आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं, तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं। अशुभयोगी की तरह असंयती और 23 दण्डक (मनुष्य को छोड़कर) कह देने चाहिए। मनुष्य समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सिद्ध नहीं कहने चाहिए।

सलेशी (लेश्यासहित) समुच्चय मनुष्य की तरह कहना। कृष्ण, नील, कापोत लेश्या वाले 22 दण्डक (ज्योतिषी व वैमानिक को छोड़कर) आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं, यानी समुच्चय जीव की तरह कह देना, परन्तु प्रमादी-अप्रमादी (साधु) और सिद्ध नहीं कहना चाहिए। समुच्चय जीव तेजोलेशी 18 दण्डक, पद्मलेशी, शुक्ललेशी तीन-तीन दण्डक मनुष्य की तरह कह देना चाहिए।

ज्ञातव्य :-

आरंभ- ऐसा सावद्य कार्य करना या किसी पापकार्य में प्रवृत्ति करना, जिससे किसी जीव को कष्ट पहुँचे या उसके प्राणों का घात हो, उसे आरंभ कहते हैं।

आत्मारंभी- जो स्वयं पाप कार्यों में प्रवृत्त होता है या अपनी आत्मा द्वारा स्वयं पाप कार्य करता है, उसे आत्मारंभी कहते हैं।

परारंभी- दूसरे जीवों को पाप कार्य में प्रवृत्त करने वाला या दूसरों से हिंसादि पाप कार्य कराने वाला, परारंभी कहलाता है।

तदुभयारंभी- जो स्वयं भी सावद्य (पाप कार्य) कार्य करता है तथा दूसरों को भी पाप-कार्यों में प्रवृत्त करता है, उसे तदुभयारंभी कहते हैं।

अनारंभी- जो न तो स्वयं पाप कार्य करता हैं और न दूसरों से कराता है। प्रत्येक प्रवृत्ति उपयोगपूर्वक करता है, वह संयत अनारंभी है। अर्थात् जो न तो आत्मारंभी है, न परारंभी है और न तदुभयारंभी है, उसे अनारंभी कहते हैं।

शुभयोगी- जो उपयोगपूर्वक, सावधानीपूर्वक समत्त्व भावों के साथ योगों की प्रवृत्ति करता है, उसे शुभयोगी कहते हैं।

छः भाव का थोकड़ा

(कर्मग्रन्थ भाग-4 के अनुसार)

जीवों में पाये जाने वाले छः भावों के नाम इस प्रकार हैं-1. औपशमिक, 2. क्षायिक, 3. क्षायोपशमिक, 4. औदयिक, 5. पारिणामिक, 6. सान्निपातिक भाव। इनके लक्षण इस प्रकार हैं-

1. **औपशमिक भाव**- आत्मा में कर्म की निज शक्ति का कारणवश प्रकट न होना उपशम है। अथवा प्रदेश और विपाक दोनों प्रकार के कर्मोदय का रूक जाना उपशम है। उपशम से होने वाले भाव को औपशमिक भाव कहते हैं। औपशमिक भाव सादि-सान्त है।
2. **क्षायिक भाव**- कर्म के आत्यन्तिक क्षय से प्रकट होने वाला भाव क्षायिक भाव है। यह भाव सादि-अनन्त है।
3. **क्षायोपशमिक भाव**- कर्मों के क्षयोपशम से प्रकट होने वाले भाव को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। क्षयोपशम एक प्रकार की आत्मिक शुद्धि है जो कर्म के एक अंश का प्रदेशोदय द्वारा क्षय होते रहने पर प्रकट होती है।

   कर्म के उदयावलि-प्रविष्ट मन्द रस स्पर्धक का क्षय और अनुदयमान रस स्पर्धक की सर्वघातिनी विपाक शक्ति का निरोध या देशघाति रूप में परिणमन व तीव्र शक्ति का मन्द शक्ति रूप में परिणमन (उपशमन) क्षयोपशम है।
4. **औदयिक भाव**- कर्मों के उदय से होने वाले भाव को औदयिक भाव कहते हैं। कर्मों की शुभाशुभ प्रकृतियों के विपाक का अनुभव करना उदय है।
5. **पारिणामिक भाव**- जिसके कारण मूल वस्तु में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो, किन्तु स्वभाव में ही परिणत होते रहना पारिणामिक भाव है अथवा कर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम की अपेक्षा न रखने वाले द्रव्य की स्वभावभूत अनादि पारिणामिक शक्ति से ही आविर्भूत भाव को पारिणामिक भाव कहते हैं।
6. **सान्निपातिक भाव**- जीव में कुछ ऐसे भाव भी पाये जाते हैं जो दो या दो से अधिक भावों से मिले हुए होते हैं। ये सान्निपातिक भाव हैं। अर्थात् एक-एक भाव को मूल भाव और दो या दो से अधिक मिले हुए भावों को सान्निपातिक भाव कहते हैं। दो भावों के मिलने से होने वाला द्विकसंयोगी, तीन भावों के मिलने से त्रिक संयोगी, चार भावों के मिलने से चतुःसंयोगी तथा पाँच भावों के मिलने से पंचसंयोगी सान्निपातिक भाव कहलाते हैं।

इन औपशमिक आदि पारिणामिक पर्यन्त पाँचों भावों के क्रमशः दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं। अर्थात् औपशमिक के 2 भेद, क्षायिक के 9 भेद, क्षायोपशमिक के 18 भेद, औदयिक के 21 भेद और पारिणामिक के 3 भेद हैं। कुल मिलाकर 53 भेद होते हैं।

औपशमिक भाव के दो भेद-1. औपशमिक सम्यक्त्व और 2. औपशमिक चारित्र।

क्षायिक भाव के 9 भेद- 1. केवलज्ञान, 2. केवलदर्शन, 3. क्षायिक सम्यक्त्व, 4. क्षायिक चारित्र, 5. अनन्त दान, 6. अनन्त लाभ, 7. अनन्त भोग, 8. अनन्त उपभोग, 9. अनन्त वीर्य।

क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं। जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं- 1. मतिज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3. अवधिज्ञान, 4. मनपर्यायज्ञान, 5. मति-अज्ञान, 6. श्रुत-अज्ञान, 7. विभंगज्ञान (अवधि-अज्ञान), 8. चक्षुदर्शन, 9. अचक्षुदर्शन, 10. अवधिदर्शन, 11. दान, 12. लाभ, 13. भोग, 14. उपभोग, 15. वीर्य, 16. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, 17. क्षायोपशमिक चारित्र-सर्वविरति, 18. संयमासंयम-देशविरति।

औदयिक भाव के कुल इक्कीस भेद इस प्रकार हैं- 1. अज्ञान, 2. असिद्धत्व, 3. असंयम, 4. कृष्ण, 5. नील, 6. कापोत, 7. तेजः, 8. पद्म, 9. शुक्ल लेश्या, 10. क्रोध, 11. मान, 12. माया, 13. लोभ कषाय, 14. नरक, 15. तिर्यंच, 16. मनुष्य, 17. देव गति, 18. पुरुष, 19. स्त्री, 20. नपुंसक वेद, 21. मिथ्यात्व।

एक जीव में भिन्न भिन्न समय में अथवा अनेक जीवों में एक समय में पांचों भाव हो सकते हैं और गुणस्थानों की अपेक्षा पहले तीन गुणस्थानों में औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये तीन भाव होते हैं। चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक आठ गुणस्थानों में पाँचों भाव, बारहवें गुणस्थान में औपशमिक के सिवाय शेष चार भाव होते हैं, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में क्षायिक, औदयिक, पारिणामिक ये तीन भाव होते हैं।

अनेक जीवों की अपेक्षा से गुणस्थानों में भावों के उत्तर भेद

औपशमिक- भाव के भेद इस प्रकार हैं- उपशम सम्यक्त्व चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त और उपशम चारित्र मात्र ग्यारहवें गुणस्थान में होता है।

क्षायोपशमिक- भाव के उत्तर भेद इस प्रकार हैं- पहले, दूसरे दो गुणस्थानों में तीन अज्ञान, चक्षु अचक्षुदर्शन, दानादि पाँच लब्धियाँ, ये दस भेद होते हैं। तीसरे मिश्रदृष्टि गुणस्थान में तीन ज्ञान (मिश्र) तीन दर्शन (यहां अवधिदर्शन सिद्धान्त की अपेक्षा माना है), सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि-मिश्रमोहनीय), दानादि पांच लब्धियां, ये बारह भाव, चौथे गुणस्थान में तीसरे गुणस्थान वाले बारह, किन्तु मिश्रदृष्टि के स्थान पर सम्यक्त्व, पांचवें गुणस्थान में चौथे गुणस्थान वाले बारह तथा देशविरति कुल तेरह, छठे, सातवें गुणस्थान में मनःपर्यायज्ञान सहित तथा देशविरति के बदले सर्वविरति को मिलाने से चौदह होते हैं। आठवें, नौवें और दसवें इन तीन गुणस्थानों में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के बिना तेरह भाव हैं। ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में चारित्र के बिना बारह भाव होते हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में घातिकर्मों का क्षय होने से क्षायोपशमिक भाव नहीं होते हैं।

औदयिक- भाव के उत्तर भेद इस प्रकार हैं- पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में सभी 21 भाव (चार गति, चार कषाय, तीन वेद, छह लेश्या, अज्ञान, असिद्धत्व, अविरति और मिथ्यात्व) होते हैं। दूसरे सास्वादन गुणस्थान में मिथ्यात्व के सिवाय बीस, तीसरे, चौथे गुणस्थान में अज्ञान के सिवाय उन्नीस (मिश्र गुणस्थान में कतिपय कार्मग्रन्थिक आचार्यों ने ज्ञान-अज्ञान दोनों माने है। सिद्धान्त में तो अज्ञान ही माना है।), पाँचवें गुणस्थान में देवगति व नरकगति के सिवाय उक्त उन्नीस में से शेष सत्रह, छठे गुणस्थान में तिर्यंच गति और असंयम को घटाने से पन्द्रह, सातवें गुणस्थान में कृष्ण, नील, कापोत इन तीन लेश्याओं के सिवाय उक्त पन्द्रह में से शेष बारह, आठवें, नौवें गुणस्थान में तेजः और पद्म लेश्या के सिवाय दस, दसवें गुणस्थान में तीन वेद और क्रोध, मान, माया, कुल मिलाकर छह के सिवाय उक्त दस में से शेष चार (मनुष्यगति, शुक्ललेश्या, संज्वलन लोभ और असिद्धत्व), ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में संज्वलन लोभ को छोड़कर शेष तीन और चौदहवें गुणस्थान में दो (मनुष्यगति और असिद्धत्व) भाव होते हैं।

पारिणामिक- भाव के उत्तर भेद इस प्रकार हैं-पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीनों भेद होते हैं। दूसरे से बारहवें तक ग्यारह गुणस्थानों में जीवत्व और भव्यत्व ये दो तथा तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में सिर्फ एक जीवत्व ही पारिणामिक भाव होता है। क्योंकि भव्यत्व भाव अनादि-सान्त है, सिद्धावस्था में उसका अभाव हो जाता है। घातिकर्म क्षय होने के बाद सिद्ध अवस्था प्राप्त होने में बहुत विलम्ब नहीं लगता है, इस अपेक्षा से तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में भव्यत्व भाव पूर्वाचार्यों ने नहीं माना है।

क्षायिक- भाव के उत्तर भेद इस प्रकार हैं- पहले तीन गुणस्थानों में क्षायिक भाव नहीं है। चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक आठ गुणस्थानों में सम्यक्त्व, बारहवें गुणस्थान में सम्यक्त्व और चारित्र तथा तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दानादि पाँच लब्धियाँ इस प्रकार कुल नौ भाव होते हैं।

सान्निपातिक- इनमें द्विक संयोगी के 10 भेद, त्रिक संयोगी के 10 भेद, चतुःसंयोगी के 5 भेद तथा पंचसंयोगी का 1 भेद, इस प्रकार कुल 26 भेद होते है। इनमें से छः भेद जीवों में पाये जाते हैं, शेष 20 भेद तो जीवों में संभव ही नहीं हैं।

जीवों में पाये जाने वाले सान्निपातिक भाव के छः भेद इस प्रकार हैं-

1. क्षायिक और पारिणामिक भाव रूप द्विसंयोगी भाव सिद्धों में मिलता है।
2. क्षायोपशमिक, पारिणामिक और औदयिक रूप त्रिक संयोगी भाव चार गति के जीवों में पाया जाता है।
3. पारिणामिक, औदयिक और क्षायिक रूप त्रिक संयोगी भाव केवलियों में तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में पाया जाता है।
4. क्षायोपशमिक, पारिणामिक, औदयिक और औपशमिक रूप चतुःसंयोगी भाव चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक के उपशम समकित वालों में तथा उपशम श्रेणि करने वाले जीवों में पाया जाता है।
5. क्षायोपशमिक, पारिणामिक, औदयिक और क्षायिक रूप चतुःसंयोगी भाव चौथे से बारहवें गुणस्थान तक के क्षायिक समकित वालों में तथा क्षपक श्रेणि करने वाले जीवों में पाया जाता है।
6. क्षायोपशमिक, पारिणामिक, औदयिक, औपशमिक तथा क्षायिक ये पाँचों भाव रूप पंचसंयोगी भाव चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक के ऐसे जीवों में पाये जाते हैं जो क्षायिक समकित प्राप्त करने के बाद उसी भव में उपशम श्रेणि को प्राप्त करते हैं।

गुणस्थानों में औपशमिक आदि 5 भावों का अनेक जीवों की अपेक्षा विवरण

क्र. सं.	गुणस्थान	एक जीव में कुल मूल भाव 5	सर्व जीवों में कुल मूल भाव 5	औपशमिक 2	क्षायिक 9	क्षायोपशमिक 18	औदयिक 21	पारिणामिक 3	कुल उत्तर भेद 53
1.	मिथ्यात्व	3	3	0	0	10	21	3	34
2.	सास्वादन	3	3	0	0	10	20	2	32
3.	मिश्र	3	3	0	0	12	19	2	33
4.	अविरति सम्यग्दृष्टि	3-4	5	1	1	12	19	2	35
5.	देशविरति	3-4	5	1	1	13	17	2	34
6.	प्रमत्तसंयत	3-4	5	1	1	14	15	2	33
7.	अप्रमत्तसंयत	3-4	5	1	1	14	12	2	30
8.	अपूर्वकरण	4	5	1	1	13	10	2	27
9.	अनिवृत्तिकरण	4-5	5	1	1	13	10	2	27
10.	सूक्ष्मसंपराय	4-5	5	1	1	13	4	2	21
11.	उपशान्त मोह	4-5	5	2	1	12	3	2	20
12.	क्षीणमोह	4	4	0	2	12	3	2	19
13.	सयोगी केवली	3	3	0	9	0	3	1	13
14.	अयोगी केवली	3	3	0	9	0	2	1	12

ज्ञातव्य :-

1. उपशम भाव 4 से 11 गुणस्थान तक रहता है। उपशम मात्र मोहनीय कर्म का ही होता है। इसमें भी दर्शन मोहनीय के उपशम से उत्पन्न भाव 4 से 11 गुणस्थान तक तथा चारित्र मोहनीय के पूर्ण उपशम से उत्पन्न भाव मात्र 11वें गुणस्थान में होता है।
2. यद्यपि कर्मग्रन्थ भाग-4 में उपशम चारित्र का भाव 9 से 11 गुणस्थान तक माना है, तथा भाव लोक प्रकाश में 8 से 11 गुणस्थान तक, 9 से 11 गुणस्थान तक तथा 11 वाँ गुणस्थान में इस प्रकार ये तीन मान्यताएँ दी हुई हैं, तथापि यहाँ भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 7 में 11वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ में ही उपशम चारित्र माना है, इस अपेक्षा से उपशम चारित्र का एक मात्र गुणस्थान ग्याहरवाँ बतलाया गया है। चारित्र मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का पूर्ण उपशम ग्यारहवें गुणस्थान में ही होता है, इस दृष्टि से भी उपर्युक्त मन्तव्य उचित लगता है। प्रवचन सारोद्धार भाग-2 के द्वार-221 के विवेचन में भी उपशम चारित्र मात्र ग्यारहवें गुणस्थान में ही माना है।
3. पहले से लेकर बारहवें गुणस्थान तक क्षयोपशम भाव रहता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय, इन तीन कर्मों का क्षयोपशम 1 से 12 गुणस्थान तक रहता ही है। मोहनीय कर्म का क्षयोपशम 4 से 10 गुणस्थान तक रहता है। क्षयोपशम भाव चार घाती कर्मों में होता है। इनमें भी जो प्रकृतियाँ स्वाभाविक रूप से सर्वघाती हैं, जब तक उनका विपाकोदय रहता है, तब तक उनका क्षयोपशम नहीं होता। वे जब जीवों के परिणामों की विशुद्धि से देशघाती बन जाती है, तभी उनमें क्षयोपशम भाव मिलता है। उस समय उनमें मात्र प्रदेशोदय ही रहता है, मन्द विपाकोदय भी नहीं रहता।

   जो प्रकृतियाँ स्वाभाविक रूप से देशघाती होती हैं, जब उनका उदय होता है तो उसके साथ क्षयोपशम भी रहता है अर्थात् मन्द विपाकोदय के साथ जितनी-जितनी विशुद्धि होती है, उतना-उतना उस प्रकृति का क्षयोपशम रहता है।
4. मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण तथा अन्तराय कर्म की दानान्तराय आदि पाँच प्रकृतियाँ, ये 8 प्रकृतियाँ ऐसी हैं, जिनका क्षयोपशम 1 से लेकर 12 गुणस्थान तक के चारों गति के सभी जीवों के नियम से रहता है। यहाँ तक कि भवी-अभवी, कृष्णपक्षी-शुक्लपक्षी, निगोदिया, प्रत्येक काय, तिर्यंच, मनुष्य, नारकी, देवता सभी जीवों के इन 8 प्रकृतियों का तो क्षयोपशम रहता ही है।
5. भगवती शतक 25 उद्देशक 7 में सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय चारित्र में क्षयोपशम भाव माना है। इससे स्पष्ट होता है कि छठे से लेकर दसवें गुणस्थानवर्ती सभी साधु-साध्वियों में चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों

का क्षयोपशम रहने से उनमें क्षयोपशम चारित्र मानना अधिक उपयुक्त है। इसी कारण क्षयोपशम चारित्र 6 से 10 गुणस्थान तक माना गया है।

6. यद्यपि क्षयोपशम भाव के 18 भेदों में मिश्रदृष्टि को नहीं गिनाया है, तथापि तीसरे गुणस्थान में मिश्रदृष्टि को क्षयोपशम भाव का अंग मानकर तालिका में दिखलाया गया है। अनुयोग द्वार सूत्र में भी मिश्रदृष्टि को क्षयोपशम भाव के अन्तर्गत माना गया है।
7. पहले व दूसरे गुणस्थान में अवधि दर्शन का उपयोग सैद्धान्तिक मान्यतानुसार समझना चाहिए। कार्मग्रन्थिक तो पहले, दूसरे गुणस्थान में अवधिदर्शन का उपयोग नहीं मानते हैं।
8. औदयिक भाव में असंयम को पाँचवें गुणस्थान तक माना गया है। यद्यपि पाँचवें गुणस्थान में आंशिक संयम आ जाता है, किन्तु फिर भी यहाँ असंयम का तात्पर्य-पूर्ण संयम का अभाव, ऐसा अर्थ मानकर इसे पाँचवें गुणस्थान तक मानना उपयुक्त है।
9. पारिणामिक भाव के अन्तर्गत भव्यत्व भाव कर्मग्रन्थ भाग-4 के आधार पर 1 से लेकर 12 गुणस्थान तक माना गया है। सैद्धान्तिक मत से तो 102 बोल के बासठिये आदि में सभी 14 गुणस्थानों में भव्यत्व भाव माना गया है। (तत्त्व केवली गम्य)

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : आठवीं – जैनागम स्तोक वारिधि (परीक्षा 07 जनवरी, 2018)

समय : 3 घण्टे अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1 = (10)

(a) क्षयोपशम भाव का भेद है-

(क) जीवत्व (ख) भव्यत्व

(ग) अभव्यत्व (घ) मतिज्ञान (घ)

(b) औदयिक भाव के भेद हैं-

(क) 10 (ख) 18

(ग) 21 (घ) 3 (ग)

(c) तेरहवें गुणस्थान में भाव हैं -

(क) 3 (ख) 5

(ग) 4 (घ) 2 (क)

(d) क्षायिक और पारिमाणिक भाव रूप द्विसंयोगी भाव मिलता है-

(क) सिद्धों में (ख) तिर्यंच गति में

(ग) मनुष्य में (घ) आचार्यों में (क)

(e) छठे देवलोक के देव की आहारेच्छा का जघन्य काल है-

(क) प्रति समय (ख) 10 हजार वर्ष

(ग) पृथक्त्व दिवस (घ) एक हजार वर्ष (ख)

(f) मनुष्य की आहारेच्छा का जघन्य काल है-

(क) अन्तर्मुहूर्त (ख) 2 हजार वर्ष

(ग) 2 दिन (घ) तीन दिन (क)

(g) अनाहारक में गुणस्थान है-

(क) पहला गुणस्थान (ख) 1 से 4 गुणस्थान

(ग) 1,2,13 व 14 गुण. (घ) 1,2,4 गुणस्थान (ग)

(h) अभाषक में उपयोग है-

(क) 6 (ख) 8

(ग) 11 (घ) 5 (ग)

(i) अवेदी में जीव के भेद हैं-

(क) 15 (ख) 5

(ग) 563 (घ) 553 (क)

(j) आहार का थोकड़ा इस सूत्र में है-

(क) भगवती सूत्र (ख) नंदीसूत्र

(ग) अनुयोग द्वार सूत्र (घ) पन्नवणा सूत्र (घ)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) कालोदधि समुद्र का जल शांत है, वहाँ बड़वानल नहीं होता है। (हाँ)

(b) जृंभक देव वैताढ्य और कंचनगिरि पर मिलते हैं। (हाँ)

(c) कर्मों के उदय से होने वाले भाव को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। (नहीं)

(d) उपशम चारित्र 4 से 11 गुणस्थान पर्यन्त होता है। (नहीं)

(e) शुभयोगी उपयोगपूर्वक, सावधानीपूर्वक समत्त्व भावों के साथ योगों की प्रवृत्ति करता है। (हाँ)

(f) कापोत लेशी एकेन्द्रिय अनारंभी भी होते हैं। (नहीं)

(g) तीन विकलेन्द्रिय की आहारेच्छा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त का है। (हाँ)

(h) नैरयिक अचित्त पुद्गलों का आहार करते हैं, सचित्त और मिश्र का आहार नहीं करते हैं। (हाँ)

(i) नारकी से देव संख्यात गुणा है। (नहीं)

(j) देवी में 6 लेश्या पायी जाती हैं। (नहीं)

प्र.3 निम्नलिखित में क्रम से जोड़ी मिलाकर उत्तर रिक्तस्थान में लिखिए:- **10x1 = (10)**

(a)	क्षयोपशम समकित में	(क) जीव के भेद 347	275
(b)	अनाहारक में	(ख) जीव के भेद 231	347
(c)	पर्याप्त में	(ग) जीव के भेद 191	231
(d)	असन्नी में	(घ) जीव के भेद 275	191
(e)	हुण्डक संस्थान में	(च) जीव के भेद 212	193
(f)	अभाषक में	(छ) जीव के भेद 193	358
(g)	समचतुरस्र संस्थान में	(ज) जीव के भेद 118	410
(h)	दो दृष्टि में	(झ) जीव के भेद 358	170
(i)	अढ़ाई द्वीप के बाहर	(य) जीव के भेद 410	118
(j)	वज्र ऋषभ नाराच संहनन	(र) जीव के भेद 170	212

प्र.4 मुझे पहचानो :- **10x2=(20)**

(a) मुझमें प्रदेश और विपाक दोनों प्रकार के कर्मोदय रूक जाते हैं। उपशम

(b) मैं शरीर पर्याप्ति होने के बाद रोमों (त्वचा)के द्वारा होने वाला आहार है। लोमाहार/रोमाहार

(c) मुझमें अभव्य तथा सिद्ध दोनों का समावेश किया जाता है। अचरम

(d) मैं समकित मोहनीय के चरम दलिक का वेदक हूँ। वेदक समकित

(e) मेरी आहारेच्छा का उत्कृष्ट काल 18 हजार वर्ष है। <u>बोनस अंक देवें ।</u> 5वाँ,8वाँ देवलोक

(f) सिद्ध शिला में सूक्ष्म के अलावा बादर के मेरे दो भेद पाये जाते हैं। बादर पृथ्वीकाय

(g) मैं एक प्रकार की समकित हूँ, जिसमें नरकानुपूर्वी का उदय नहीं होता है। सास्वादन समकित

(h) मुझमें 14 योग व जीव के 5 भेद होते हैं। भाषक

(i) मुझमें जीव का भेद 7, गुणस्थान 3, योग 5 तथा लेश्या 6 पायी जाती हैं। अपर्याप्त

(j) मैं पहले और दूसरे देवलोक के नीचे के प्रतर में रहने वाला किल्विषी हूँ।

त्रैपल्योपमिक/पहला किल्विषी

प्र.5 एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए- **9x2=(18)**

(a) शाश्वत किसे कहते हैं?

उ. विरह पड़ने पर भी जो जीव के भेद विद्यमान रहे, हमेशा मिले, वे शाश्वत कहलाते हैं।

(b) सान्निपातिक भाव का पंच संयोगी भंग लिखिए और यह भंग किसमें पाया जाता है ?

उ. क्षायोपशमिक, पारिणामिक, औदयिक, औपशमिक तथा क्षायिक ये पाँचों भाव रूप पंचसंयोगी भाव चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक के ऐसे जीवों में पाये जाते हैं जो क्षायिक समकित प्राप्त करने के बाद उसी भव में उपशम श्रेणि को प्राप्त करते हैं।

(c) द्विकसंयागी सान्निपातिक भाव लिखिए एवं यह किसमें पाया जाता है ?

उ. क्षायिक और पारिणामिक भाव रूप द्विसंयोगी भाव सिद्धों में मिलता है।

(d) क्षायिक भाव के 9 भेद लिखिए।

उ. क्षायिक भाव के 9 भेद- 1. केवलज्ञान, 2. केवलदर्शन, 3. क्षायिक सम्यक्त्व,
4. क्षायिक चारित्र, 5. अनन्त दान, 6. अनन्त लाभ,
7. अनन्त भोग, 8. अनन्त उपभोग, 9. अनन्त वीर्य।

(e) **पारिणामिक भाव को परिभाषित कीजिए।**

उ. जिसके कारण मूल वस्तु में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो, किन्तु स्वभाव में ही परिणत होते रहना पारिणामिक भाव है अथवा कर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपक्षम की अपेक्षा न रखने वाले द्रव्य की स्वभावभूत अनादि पारिणामिक शक्ति से ही आविर्भूत भाव को पारिणामिक भाव कहते हैं।

(f) **भरत क्षेत्र में जीव के भेद लिखिए।**

उ. भरत-ऐरवत क्षेत्र में 51-51 भेद (48 तिर्यंच के और 3 मनुष्य के- अपर्याप्त, पर्याप्त और सम्मूर्च्छिम)

(g) **जीवधड़ा से मनयोगी में जीव के भेद लिखिए।**

उ. मनोयोगी में 212 भेद (7 नारकी, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, 101 सन्नी मनुष्य और 99 देवता इन सबके पर्याप्त)

(h) **तेजो लेश्या में गुणस्थान, योग, उपयोग लिखिए।**

उ.

	गुणस्थान	योग	उपयोग
तेजो लेश्या	7	15	10

(i) **परित्त द्वार की अल्पबहुत्व लिखिए।**

उ. सबसे थोड़े परीत, उनसे नो परीत नो अपरीत अनन्त गुण और उनसे अपरीत अनन्त गुण हैं।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर तीन-चार वाक्यों में लिखिए : -(कोई 8) 8x4=(32)

(a) **संसारी जीवों के भेद करते हुए उसमें आत्मारंभी आदि की विवक्षा कीजिए।**

उ. संसारी जीवों के दो भेद हैं- संयति और असंयति। संयति के दो भेद हैं-प्रमादी और अप्रमादी। अप्रमादी संयति न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। प्रमादी के दो भेद हैं- शुभयोगी और अशुभयोगी। शुभयोगी भी न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। अशुभयोगी आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं, तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं।

(b) **औदयिक भाव के 21 भेदों के नाम लिखिए।**

उ. औदयिक भाव के 21 भेद 1. अज्ञान, 2. असिद्धत्व, 3. असंयम, 4. कृष्ण, 5. नील, 6. कपोत, 7. तेजः, 8. पद्म, 9. शुक्ल लेश्या, 10. क्रोध,11. मान, 12. माया, 13. लोभ कषाय 14. नरक, 15. तिर्यंच, 16. मनुष्य, 17 देवगति, 18. पुरुष, 19. स्त्री, 20. नपुसंकवेद, 21. मिथ्यात्व।

(c) दृष्टि द्वार के कोई चार बोलों में चारों गति में पाये जाने वाले जीव के भेद लिखिए।

उ.

जीवों की मार्गणा	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	समुच्चय
सम्यग्दृष्टि में	13	18	90	162	283
मिथ्यादृष्टि में	14	48	303	188	553
मिश्रदृष्टि में	7	5	15	76	103
सास्वादन समकिती में	7	18	30	143	198
उपशम समकिती में	7	5	15	111	138
वेदक समकिती/क्षायिक वेदक में	3	1	55	35	94
क्षयोपशम समकिती में	13	10	90	162	275
क्षायिक समकिती में	6	2	90	70	168
एकान्त सम्यग्दृष्टि में	-	-	-	10	10
एकान्त मिथ्यादृष्टि में	1	30	213	36	280
एक दृष्टि में	1	30	213	46	290
दो दृष्टि में	6	13	75	76	170
तीन दृष्टि में	7	5	15	76	103

नोटः- इनमें से कोई भी चार बोल मान्य है।

(d) नीचे लोक में जीव के भेद लिखिए तथा वहाँ मनुष्य के भेद मानने के क्या कारण है ?

उ. नीचालोक में 115 भेद (14 नारकी, 48 तिर्यंच के, 3 मनुष्य (जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र की सलिलावती व वप्रा विजय नीचे लोक में 100 योजन तक गई हुई हैं, वहाँ रहने वाले मनुष्यों की अपेक्षा से गर्भज मनुष्य के अपर्याप्त, पर्याप्त एवं सम्मूर्च्छिम) 10 भवनपति, 15 परमाधामी, इन 25 के अपर्याप्त-पर्याप्त =50 देवता के)

(e) वैक्रिय मिश्र काय योग में जीव के भेद स्पष्ट कीजिए।

उ. जीव के भेद- 14 नारकी, 6 तिर्यंच (5 सन्नी तिर्यंच, 1 बादर वायुकाय के पर्याप्त), 15 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त, 184 देवता- (99 अपर्याप्त, 85 पर्याप्त) इस प्रकार कुल 14+6+15+184=219 भेद होते हैं।

(f) वेद द्वार के बोलों में बासठिया लिखिए।

उ.

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. सवेदी में	14	9	15	10	6
2. पुरुष वेदी में	2	9	15	10	6
3. स्त्री वेदी में	2	9	13	10	6
4. नपुंसकवेदी में	14	9	15	10	6
5. अवेदी में	1	6	11	9	1

(g) दसवें गुणस्थान में अनाकार उपयोग नहीं मानने का कारण लिखिए।

उ. दसवें गुणस्थान में जो भी जीव प्रवेश करता है, वह साकार उपयोग में ही प्रवेश करता है। वहाँ साकार उपयोग का अन्तर्मुहूर्त्त काल समाप्त होने के पहले ही दसवें गुणस्थान की अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति पूर्ण हो जाती है, इसलिए दसवें गुणस्थान में अनाकार उपयोग नहीं माना जाता ।

(h) भावों के चतुःसंयोगी भंगों को लिखिए तथा ये किनमें पाये जाते हैं ?

उ. क्षायोपशमिक, पारिणामिक, औदयिक और औपशमिक रूप चतुःसंयोगी भाव चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक के उपशम समकित वालों में तथा उपशम श्रेणी करने वालों जीवों में पाया जाता है।

क्षायोपशमिक, पारिणामिक, औदयिक और क्षायिक रूप चतुःसंयोगी भाव चौथे से बारहवें गुणस्थान तक के क्षायिक समकित वालों में तथा क्षपक श्रेणी करने वाले जीवों में पाया जाता है।

(i) कषाय द्वार के बोलों की अल्पबहुत्व लिखिए।

उ. अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अकषायी, उनसे मानी अनन्त गुण, उनसे क्रोधी विशेषाधिक, उनसे मायी विशेषाधिक, उनसे लोभी विशेषाधिक और उनसे सकषायी विशेषाधिक है।